अशिक्षित है, अनाथ है, उसके लिये सनाथ बनाने का प्रयास किया जाए। बाद में उन्हें धार्मिक शिक्षण देने का प्रयास करो तो आज का यह आयोजन ठीक है, अन्यथा नाममात्र के लिए ही आयोजन रह जाएगा। दस व्यक्ति बैठकर इसकी प्रशंसा करने लगें, करें लेकिन मैं इस सिंघई पदवी का समर्थन-प्रशंसा नहीं कर सकूँगा। एक जमाना था जब इस प्रकार का आयोजन कर उपाधियां दी जाती थीं पर आज यह जरूरी नहीं है।

इन उपाधियों का मैं निषेध कर रहा हूँ किन्तु इनके माध्यम से अड़ोस-पड़ोस में जब तक सौहार्दमय व्यवहार नहीं बढ़ता, तब तक इन उपाधियों का क्या प्रयोजन? हमारे भगवानों ने तो कहा है कि आधि, व्याधि और उपाधियां संसार में भटकने वाली है। अतः उपाधियों से दूर हो समाधि की साधना करें,तो ऋषभनाथ भगवान् की जय जयकार करने में सार्थकता आ जायेगी अन्यथा मात्र प्रशंसा से कुछ भी सार्थकता नहीं होने वाली।

विश्व में क्या हो रहा है? इसको देखने की चेष्टा करो। धर्म कहां नहीं है? हमारे पास धर्म है, दूसरे के पास नहीं। हम सम्यग्दृष्टि हैं दूसरे मिथ्यादृष्टि। हम जैनधर्म की ज्यादा प्रभावना कर रहे हैं, दूसरे नहीं। इस प्रकार के भाव जिसके मन में है, वह अभी जैनधर्म की बात समझ ही नहीं रहा है। वह जैनधर्म से कोंसो दूर है।

''न धर्मो धार्मिकैर्बिना''

दो हजार वर्ष लगभग हो चुके हैं आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने डंका बजाया था। बन्धुओ! जो मद के आवेश में जाकर धर्मात्माओं के प्रति यदि अनादर का भाव व्यक्त कर रहा है जो वह अपने शुद्ध अहिंसा धर्म की ही हत्या रह रहा है। क्योंकि ''न धर्मो धार्मिकैर्बिना'' कहा है। हमारे अन्दर संकीर्णता आ चुकी, आती जा रही है। सन्तों का कहना है कि ''वसुधैव कुटुम्बकम्''। आज जैनी-जैनी, हिन्दू-हिन्दू भी एक प्रकार के दायरे/सीमाओं में बंधते चले जा रहे हैं। यह संकीर्णता धर्म का परिणाम नहीं है, इसे ध्यान रखिये। बातों से धर्म नहीं होता, कारण कि जो बहरा है वह भी धर्म कर रहा/कर सकता है। जो अन्धा है, लूला है वह भी धर्म को कर सकता है। परन्तु जो पंचेन्द्रिय होकर के हाथ-पैर अच्छे होकर भी, मात्र ऊपर-ऊपर बातें करता है तो वह कर्मसिद्धान्त से अभी भी सौ कोस दूर है। पास आने की चेष्टा करनी चाहिए उसे। एक बार तो कम से कम, गरीबों की ओर देखकर दया का अनुभव करो। धर्मात्मा यही सोचता रहता है, ऐसा सोचना ही अपायविचय धर्म ध्यान है।

अपाय विचयधर्मध्यान का अर्थ क्या है, उसका क्या महत्व है? आचार्य कहते हैं कि जितना आज्ञाविचय धर्मध्यान का महत्व है उतना ही अपायविचय धर्मध्यान का है। जिनेन्द्रदेव की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना, सर्वज्ञ की आज्ञानुसार चलना। यह आज्ञाविचय धर्मध्यान है। इसकी सच्चाई से अपायविचय धर्मध्यान की महत्ता कहीं अधिक है। "संसारी प्राणी का कल्याण हो, इनका दुःख दूर हो, सभी सन्मार्ग का अनुसरण करें" ऐसा विचार करना अपायविचय धर्मध्यान है। इस प्रकार की ही भावना में जब ऋषभनाथ भगवान् की पूर्वावस्था की आत्मा तल्लीन हुई थी, उस समय तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध हुआ था। उसी का परिणाम दूसरे जीवन में असंख्यात जीवों का कल्याण, एक जीव के माध्यम से हुआ। सुभिक्ष हुआ दिशाबोध दिया और सर्वेसर्वा बने। आज भी उनके नाम से असंख्यात जीवों का कल्याण हो रहा है। ऐसा कौन-सा कमाल का काम किया उन्होंने? यही किया जो उनके दिव्य-उपदेश से स्पष्ट है-

दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया ना छोड़िये, जब लौं घट में प्राण॥

क्या कहता है यह दोहा? जब तक इस संसार में रहें, घट में प्राण रहें तब तक दया धर्म करो, तभी सबका, स्व-पर का कल्याण हो सकता है। यदि दया की जगह अभिमान घट में आया हुआ है तो तीन काल में भी कल्याण होने वाला नहीं। पाप का मूल अभिमान है। लोभ के वशीभूत होकर व्यक्ति अन्याय-अत्याचार के साथ वित्त का संग्रह करता है और मान के वशीभूत होकर यदि दान करता है तो वह कभी भी प्रभावना नहीं कर सकता, ना ही अपनी आत्मा का कल्याण कर सकता है। सबसे पहले नीति-न्याय से वित्त का अर्जन करें, फिर दानादिकार्य के माध्यम से अड़ोस-पड़ोस की सहायता करे, जैन आयतनों की रक्षा करने के लिए कदम बढ़ायें। इस प्रकार करना प्रत्येक सद्गृहस्थ का कर्तव्य है-ऐसी सन्तों की वाणी है। इस वाणी का जब तक अनुसरण होगा, धर्म का अभाव नहीं होगा, लेकिन जिस दिन जिनवाणी का अनुसरण बन्द हो जायेगा और अभिमान के वशीभूत हो जायेंगे उस दिन रावण-राज्य आने में देरी नहीं।

एक उदाहरण दे रहा हूँ जिसमें धर्म क्या है? कैसा है? क्या तिर्यंच धर्मशास्त्र का स्वाध्याय करते हैं? क्या कभी तिर्यंच आपके सामने आपके

ऊपर उपकार करते हैं? क्या वे कोई धार्मिक अनुष्ठान करते हैं? कभी मन्दिर भी आते-जाते हैं? यदि आ जाते हैं तो उन्हें धर्मलाभ होता है क्या? आचार्यों ने कहा--धर्मलाभ हो, यह कोई नियम नहीं। अभी पण्डित जी ने भी कहा था--आयोजन जितने भी हैं सभी साधन के रूप में हैं, साध्य के रूप में तो धर्म रहेगा। ये साधन हैं इनमें उलझे रहें, उपाधियों में उलझे रहे तो तिर्यंच हमसे कहीं आगे बढ़े हुए होंगे, जो इनसे सर्वथा दूर है।

रामायण आपने पढ़ी होगी, सुनी होगी। पद्मपुराण में भी यह कथा आती है। जटायू पक्षी की वह कथा जिसने रामायण की पृष्ठभूति बना दी है। राम जब बनवास पर थे। सीता और लक्ष्मण भी साथ-साथ है। जंगल में अपना काल व्यतीत कर रहे हैं। एक दिन की बात, एक सन्त आये। सभी ने आहार दान दिया। आहार दान के समय सन्त के पैर धोए गये थे। उस जल में एक जीव आकर बैठ गया और उसमें लोट-पोट करते ही, उसका सारा का सारा बदन व बाल स्वर्ण के हो गये। उसकी सभी ने प्रशंसा की। तभी एक पेड़ पर बैठा जटायु पक्षी यह दृश्य देख रहा था। सन्त चले गये और बात भी जाती रही।.....एक दिन की बात। सीता को रावण हरणकर ले जाने वाला है तो जटायु पक्षी सोचता है--एक अबला, का यह हरण कर रहा है, उसके ऊपर प्रहार कर रहा है। और मैं यहा बैठा देख रहा हूं। जबकि मैं संकल्पित हूँ--

"रघुकुल रीति सदा चली आई। प्राण जायें पर वचन न जाई।"

राम ने मुझे प्रतिज्ञा दिलाई कि अनाथ के ऊपर यदि किसी का हाथ उठता है तो देखते न बैठना। हम लोग नश्वर जीवन को नहीं समझ रहे हैं, इसे अविनश्वर बनाने का प्रयास कर रहे हैं। जिस समय किसी धर्मात्मा के ऊपर संकट आ जाता है उस समय दूसरा धर्मात्मा यदि छुपने का प्रयास करता है तो वह कायर है। उसे नश्वर जीवन के सदुपयोग के लिए सिंह के समान गर्जना करते हुए आना चाहिए। मुझे कोई भय नहीं। जीवित रहने की कोई आवश्यकता नहीं। यही मेरा धर्म है, यही जीवन। धर्म सदा ही मेरे साथ रहेगा। मैं जीवित रहूं या नहीं। यह सोच वह आक्रमण करने के लिए तैयार हो जाता है। वही सच्चा धर्मात्मा माना जाता है।

धर्मात्मा के ऊपर आज पहाड़ टूट रहे हैं और हम देख रहे हैं, फिर भी अपनी आत्मा को धर्मात्मा मानते हैं। उसे मैं तो जीवित भी नहीं मानता। जड़

का धर्म मानना भले ही स्वीकार कर लूंगा। आप लोग जिस प्रकार धन की रक्षा करते हैं, उससे भी बढ़कर धर्म की रक्षा करनी चाहिए। धर्म के द्वारा ही जीवन बन सकता है। यदि धर्मात्मा का अनादर मन से, वचन से, काय से, कृत-कारित-अनुमोदन से स्वप्न में भी करते हैं, तो उसके धर्म का नहीं, वरन् स्वयं के अहिंसा धर्म को अनादृत करते हैं, ऐसी गर्जना इस युग में आचार्य समन्तभद्र स्वामी जैसे महान् आचार्यों ने की है। मान बहुत बढ़ता जा रहा है, यह सब पंचम काल की देन है। हमारा जीवन ऐसा बनना चाहिए, जैसी सिगड़ी के ऊपर भगौनी का। उसमें दूध तप रहा है दो किलो, तीन किलो और भी आ सकता है उसमें। लेकिन उतना ही दूध तपने के उपरान्त ऊपर आने लग जाता है। तपन के कारण वह ऊपर आता रहता है। ज्यों ही ऊपर आता है, त्यों ही तपाने वाला दूध समाप्त न हो जाए, इस भय से पास आ जाता है और क्या करता है उस समय? उस समय वह जल्दी-जल्दी शान्तिधारा छोड़ देता है, दूध नहीं ढांकता, बल्कि एक चम्मच जल पटक देता है। पटकते ही दूध नीचे चला जाता है। इसका क्यों मतलब हुआ? मतलब तो ये हुआ कि जब अग्नि ने दूध में जो जल था उसे जलाया तो दूध ने भी सोचा कि जब मेरे मित्र या दोस्त, मेरे सहयोगी के ऊपर यदि अग्नि ने धावा बोला है, तो मैं भी इसे समाप्त करूंगा। यही सोचकर वह उबलता हुआ, अग्नि की ओर आने लगा। लेकिन दूध तपाने वाले ने डर करके कि अग्नि के प्राण न निकल जाए, शान्तिधारा छोड़ दी। अरे भैय्या! तुम्हारे मित्र को हम दे देते हैं, तुम बैठ जाओ। तो दूध बैठ जाता है।

ऐसी होनी चाहिए मित्रता। उसको ही मित्र, दोस्ती, साथी और सहयोगी कहते हैं, जो विपत्ति के समय पर, प्रसंग पर साथ दे। अन्यथा न तो वह साथी माना जाएगा, न धर्मात्मा ही। बन्धुओ! मान प्रतिष्ठा के लिए संसारी प्राणी सब कुछ त्याग कर देता है, लेकिन अपने आत्मोदय के लिए कुछ भी नहीं करता। मैं इन सभी कार्यक्रमों की प्रशंसा तभी करता हूं, जब आप लोगों के कदम इस दिशा की ओर भी बढ़ते हैं। यह जीवित कार्य है। इस युग में यह कार्य हुआ ही नहीं है। हुआ भी है तो बहुत कम हुआ है।

विनोबा जी, जिस समय दक्षिण की ओर भूदान को लेकर के आए थे, तभी मुझे महापुराण में कही गई भूदान की बात याद आ गई। वहां पर गृहस्थों के चार धर्मों में पूजा भी रखी है। पूजा का अर्थ भूदान लिखा गया है। जी हाँ! महापुराण का उल्लेख है। जो व्यक्ति खाने के लिए मुहताज हो रहा है, उसके

लिए आश्रय दे दीजिए तो वह नियम से धर्म को अपनायेगा। आज हम तात्कालिक उपदेश तो दे देते हैं। उसके द्वारा ही उसके कार्य की पूर्ति होने वाली है। इस कारण वह धर्म के प्रति जल्दी आकर्षित नहीं होता। युग बदल चुका है। विनोबा जी की बात को सुनकर मैंने सोचा–हां, आज भी भूदानयज्ञ की बात जीवित है जो कि जैनाचार्य के द्वारा घोषित की गई थी।

आज कौन-कौन ऐसे व्यक्ति हैं जो आवासदान देने को तैयार है। कभी आपने सोचा जीवन में कि जो गर्मी-सर्दी से पीड़ित है उसे आवास दान दें, एक मकान बनवा दें। आवास देने के उपरान्त उनको ऐसा ही नहीं छोड़ा जाए, किन्तु उन्हें कह दिया जाए कि देखो भैय्या! तुम्हारी आवास सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति तो हो गई, अब कम से कम धर्म-कर्म करना चाहिए।

राजस्थान की बात है। जहां पर सेठ जी ने एक फैक्टरी (मिल) खोली थी। उसमें जो गरीब-गरीब व्यक्ति थे। उनको काम पर लगाया और उनकी सारी की सारी, वेतनादि की भी व्यवस्था कर दी गई। फिर कहा गया–हमने इतना सारा प्रबंध आपका कर दिया है, अब प्रत्येक व्यक्ति को रात्रिभोजन, मद्य, मांस, मधु का त्याग और देवदर्शन के उपरान्त ही मिल में काम करना चाहिए। जब तक वे रहें, तब तक तो कार्यक्रम वैसा ही चलता रहा, बाद में वह समाप्त हो गया और मिल भी उनके हाथ से निकल गई।

बन्धुओं! जो कोई भी कार्य किया जाता है, धर्म के लिए किया जाता है। वह भी क्रम से, विधिपूर्वक करना चाहिए। मात्र जय-जयकार करने से कुछ नहीं होगा। अभी मैं देख रहा था कि जुलूस प्रारंभ हो गया, रथ भी प्रारंभ हुआ, हम आगे-आगे चल रहे थे। इस आयोजन को देखने के लिए हजारों-लाखों की जनता आई पर चलने वाले लोग प्रशस्त चाल से नहीं चल रहे थे, साथ में लाठी वाले तो धूल भी उड़ा रहे थे, जिसमें दृश्य दिखना ही बन्द हो गया था। यहां इन अवसरों पर ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि जो दूर-दूर से व्यक्ति आये हैं, उन्हें भी पूरा-पूरा लाभ मिले। यही प्रेम है, वात्सल्य है। उन्हें पहले व आगे बैठाना चाहिए। लेकिन हम आगे बैठ जाते हैं। वे हमारे सर्वप्रथम अतिथि हैं, उनका सत्कार-सम्मान करना चाहिए। हम तो यहीं के हैं। इस प्रकार का वातावरण हो जाए तो इसी का नाम राम-राज्य है।

आज हम कहते तो हैं कि राम-राज्य आ जाये। भगवान् महावीर स्वामी का राज्य आ जाये। महावीर भगवान का सन्देश मिल जाए, लेकिन कहने

मात्र से तीन काल में भी मिलने वाला नहीं। बातों के जमा-खर्च से कभी कुछ नहीं होता। जिस प्रकार दूध में ज्यों ही पानी डाला, वह शान्त हो गया। उसी प्रकार हम भी यदि अपने साधर्मियों के प्रति वात्सल रखेगे, सद्व्यवहार करेंगे तो मैं कहता हूं कि स्वप्न में भी किसी के ऊपर कोई संकट आने वाला नहीं। अभी पण्डित जी ने कहा था–धर्मसंकट में है, धर्मगुरु संकट में हैं, जिनवाणी भी संकट में है। किन्तु मैं कहता हूँ कि ये तीनों संकट मुक्त हैं, तभी मुक्ति के साधन है। संकट तो हमारे ऊपर है। संकट तभी आते हैं जब हमारे भीतर ये तीनों जीवित नहीं रहते। धर्म-कर्म से हमारा कोई भी सम्बन्ध नहीं रहेगा तो जीवन बिना संकट के रह नहीं पायेगा। इनकी रक्षा की जाए तो कोई आपत्ति नहीं। इनकी रक्षा का अर्थ यही है कि हम धर्म को ही जीवन समझ लें। मात्र लिखना-पढ़ना धर्म वहीं है, धर्म तो जीवित वस्तु का नाम है।

हम अहिंसा परमो धर्म की जय बोलते हें, "अहिंसा अमर हो" ऐसा कहते हैं। लेकिन गांधी जी ने, जिनके पास मात्र दो सूत्र थे, अहिंसा और सत्य। इन दोनों सूत्रों के माध्यम से ढाई सौ वर्षों से आई हुई ब्रिटिश सत्ता से बिना शस्त्र, पिस्तौल, रायफल, तलवार, ढाल, तोप और बिना एटमबम के ही स्वतन्त्रता दिलाई। उन्होंने सत्य, अहिंसा का ऐसा "एटमबम" छोड़ दिया कि सभी देखते रहे गये और सोचते रहे, ऐसी कैसी सामर्थ्य है। हम लाखों रुपये भी देदें तो भी नहीं मिलने वाली। लाख क्या? कई लाखों में भी मिलने वाली नहीं। यह अहिंसा की उपासना है, उसी का यह प्रभाव है कि ब्रिटिश सरकार को यहां से भागना पड़ा। आज 35-40 वर्ष हो गये स्वतन्त्रता मिले इस देश को, लेकिन इसका सदुपयोग, सही-सही नहीं हो रहा है। आज हम आपस में लड़ रहे हैं कुर्सी के लिए। ऐसी-ऐसी भी लड़ाई हमने देखी-सुनी है कि एक कुर्सी के लिए दस व्यक्ति लड़ रहे हैं तो कुर्सी नियम से टूटेगी ही। पहले तो ऐसा नहीं था, कहते थे कि कुर्सी पर आप बैठिये, आप ही इस पर बैठने के पात्र हैं। हम तो आपके निर्देशन के अनुसार चलेंगे। पर आज? प्रत्येक व्यक्ति नेता बनना चाहता है। कोई पीछे चलना नहीं चाहता। पागल भी हमेशा आगे चलता है, उसके पीछे हंसने वाले लोग, पागल कभी भी हंसता नहीं। क्या नेता बन जाएगा वह? नहीं, ऐसा तीन काल में भी नहीं हो सकता। कुर्सी केवल एक निमित्त है। उस कुर्सी का प्रयोजन इतना ही है कि उस पर बैठकर अपनी आंखों से देख सकें कि कहां पर, लोग कैसे-कैसे

रह रहे हैं। हम उनके दु:ख-दर्द को समझ सकें और मिटाने का प्रयास रात-दिन करें। एक जगह लिखा है–

"परिहर्तुमनागसि"

जो निरपराध जीव हैं, उनके ऊपर प्रहार करने के लिए क्षत्रियों के हाथ में तलवार नहीं दी गई। और न ही अपराधियों को मारने के लिए, अपराधियों को भयभीत करने के लिए शस्त्र दिये गए हैं। उपदेश भी इसीलिए होता है कि दु:ख दूर हो और शान्ति की प्रस्थापना हो।

आप लोगों का कार्य आगे होने वाला है। मैं भगवान् से यही प्रार्थना करता हूँ, कि आपकी भावना, धर्म के प्रति दिन दूनी, रात चौगुनी निष्ठा के साथ बढती रहे। तीन घण्टे हो गये किसी को भी ना खाने की चिन्ता है, ना पीने की। पीछे क्या हो रहा है, इसका ख्याल भी नहीं रहा। गर्मी में भी सभी लोग पैदल चल रहे हैं, उस पर भी नग्न पैरों। फिर भी सभी के मुख परम आनन्द की लहरें दिखाई दे रहीं हैं। मुझे देखकर यही लगता है कि आज भी अटूट श्रद्धा है, ऐसी ही बनी रहे, यही भगवान् से प्रार्थना करते हैं। कैसा भी युग आ जाये, उसको भी शान्ति के साथ, वात्सल्य-प्रेम के साथ निभायें। रूखी-सूखी रोटी हों, इसकी भी कोई परवाह नहीं, बस! प्रेम के साथ दो व्यक्ति मिलकर एक रोटी भी खाते हैं तो पहलवान बन जाते हैं। एक अकेला ही व्यक्ति दस रोटी भी ईर्ष्या के साथ खाता है तो उसे अस्पताल जाने की आवश्यकता पड़ती है। बाजरे की सूखी-रूखी खाओ, लेकिन धर्म की रक्षा के लिए धर्मात्मा बन कर खाओ। तीन काल में भी आपको कष्ट नहीं होगा। देव आकर आपकी रक्षा करेंगे। दानव जब उपसर्ग करेंगे तो देव आकर हटायेंगे, खदेड़ेंगे और रक्षा होगी।

अहिंसा धर्म एवं धर्मात्मा की रक्षा करना देवताओं का काम है। इसीलिए उन्हें शासनदेवता भी कहते हैं। जब हम धर्म करते हैं, उसमें दृढ़ रहते हैं तो वे ऊपर से आ जाते हैं। वे भी देखते रहते हैं कि कौन क्या कर रहा है। जैसे पुलिस लड़ते हुए व्यक्तियों के बीच नहीं आती और ना ही आने की आज्ञा शासन की है। लड़-भिड़कर गिर जाते हैं, जब उठना भी मुश्किल हो जाता है, उस समय पुलिस पहुंचकर पकड़ती है। कॉलर पकड़कर कहती है- क्या कर रहे हो? अपराधी कहते हैं कि आप जो कहो मैं वह करने को अब तैयार हूं। इसी प्रकार देवता लोग भी आकर सहायता करते हैं। यदि

आपका कार्य ठीक-ठीक चल रहा है तो उनके सहयोग की आने-जाने की कोई आवश्यकता नहीं। उस समय तो वह आपकी प्रशंसा करके वंदना करेंगे और अपने आपको कृतकृत्य मानेंगे।

धन्य है यह नर साधना
इन्द्र पद ने भी की हो, जिसकी आराधना।

ऐसे इन्द्र भी, आप लोगों की प्रशंसा के लिए आयें। अत: धन्य हैं। अन्तिम मंगलाचरण के रूप में यह दोहा आपके सामने हैं–

यही प्रार्थना वीर से, अनुनय से कर जोड़।
हरी-भरी दिखती रहे, धरती चारों ओर॥

□□

प्रवचनिका

सागर नगर में गजरथ महोत्सव (1993) के अवसर पर आयोजित धर्मसभा में हुए प्रवचनों का संग्रह।

-संपादनः मुनि श्री क्षमासागर

प्रारम्भ

दरबार में आसीन है चक्रवर्ती सिंहासन के ऊपर प्रसन्न मुद्रा में आसीन एक सेवक आनंद विभोर होता हुआ नतमस्तक होकर कहता है कि प्रभो। आपका पुण्य अतुलनीय है, आप महान भाग्यशाली हैं और हम भी भाग्यशाली हैं कि आप जैसी भाग्यशाली पुण्य का उपभोग करने वाली आत्मा को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। तब चक्रवर्ती पूछता है कि बताओआखिर बात क्या है? ऐसी कौन सी घटना घट गयी, तो सेवक कहता है कि आपको काम-पुरुषार्थ के उपरान्त वह सफलता प्राप्त हुई है कि आपको पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई है। आप आदेश दीजिये कि हम उत्सव मना सकें। क्षणभर व्यतीत हुआ कि दूसरा सेवक उससे भी ज्यादा प्रशंसा के साथ गद्‌गद होता हुआ आकर कहता है कि यह तो महलों के भीतर की बात हो गयी। हम तो बताने आये हैं कि आपका यश, आपकी कीर्ति, आपकी ख्याति सब ओर फैलने वाली है।

आयुध शाला में अर्थ पुरुषार्थ के फलस्वरूप आपको चक्ररत्न की प्राप्ति हुई है। अब आप चक्रेश हो गये, नरेश हो गये। अभी तक सुनते थे हम कि 32 हजार मुकुट बद्ध राजा जिनके चरणों में आकर अभिवादन करते हैं, वह चक्रवर्ती कहलाते हैं। आप ऐसे ही चक्रवर्ती हो गये।

और अगले ही क्षण भागता-भागता हुआ एक सेवक आ जाता है कि क्या बतायें, हम शास्त्रों में पढ़ते थे, सुनते थे और भगवान् से प्रार्थना करते थे कि आँखें उस दृश्य को साक्षात् देखकर कब पवित्र होंगी। साक्षात् दिव्य ध्वनि सुनकर कान कब पवित्र होंगे। आप भाग्यशाली हैं कि आपके जीवनकाल में ऐसा महोत्सव देखने को मिल रहा है। मुक्ति मानो साक्षात् आकर खड़ी हो गयी है। आदिनाथ भगवान को केवल ज्ञान प्राप्त हो गया है। (तालियां)

आप तालियां बजाकर हर्ष प्रकट कर रहे हैं। ठीक भी हैं। एक भव्यात्मा को केवल ज्ञान प्राप्त हो जाता है तो उसके प्रकाश में सारा अंधकार भी अंतर्धान हो जाता है और चलने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। अभी तक तो उस प्रकाश की बात सुनी थी, आज तो प्रकाश में स्नपित होने का अवसर आया है। केवल ज्ञान से विभूषित होकर अब आपके पिता (व्यवहार की

अपेक्षा कह रहा हूँ) जगत् पिता हो गये हैं। आदिम तीर्थंकर, तीर्थ के संचालक हो गये हैं।

इतना सुनते ही, उसी समय चक्रवर्ती ने कहा कि चलो सपरिवार धूमधाम से भगवान के समवशरण में चलेंगे और शेष काम तो बाद में होते रहेंगे। अभी न हुकूमत की ओर दृष्टि है, न संतान की ओर दृष्टि है, अभी तो ज्ञानगुण जो हमारा है, उसकी एक संतान को शुद्ध पर्याय जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई वही वास्तविक संतान है जो दुनिया को प्रकाशित करेगी। उसी का दर्शन करेंगे। "तज्जयति परं ज्योतिः, समं समस्तैरनन्तपर्यायैः। दर्पणतल इव सकला, प्रतिफलति पदार्थमालिका यत्र।।"-वह कैवल्य ज्योति जयवन्त हो जिसमें दर्पण के समान सभी पदार्थ अपने अनंत पर्यायों सहित प्रतिबिम्बित होते हैं।

सम्यग्दृष्टि को अपनी संतान की इतनी चिन्ता नहीं रहती, अपने धन के बारे में भी कोई चिन्ता नहीं रहती और हुकूमत चलाने में भी विशेष उल्लास नहीं होता। सभ्यग्दृष्टि को अपनी आत्मा के बारे में सुनने का उल्लास अधिक होता है। यह अपेक्षाकृत बात कह रहा हूँ और सभी बातों की अपेक्षा अधिक उल्लास तो धर्म की बात का ही होता है, चक्रवर्ती सोचता है कि हमें अभी केवलज्ञान नहीं हुआ, कोई बात नहीं लेकिन ऋषभनाथ को केवलज्ञान प्राप्त हुआ, वहाँ समवशरण की रचना होगी और हमें अपने भविष्य के बारे में अपने धर्म के बारे में, अपनी आत्मा के बारे में सुनने का अवसर मिलेगा। यह घड़ी धन्य है और वह सभी बातों को गौण करके केवल ज्ञान की पूजा करने चला जाता है।

वह अपना द्रव्य, अपना तन-मन-धन सभी कुछ लगा देता है और पूजा करके अपने आप को कृतकृत्य अनुभव करता है। धन्य है यह अवसर। आप दुनिया की बातें करते हो, आत्मा की बात करनी चाहिये। आप दूसरे की बात करते हो, अपनी बात करनी चाहिये और अपनी भी मात्र ऊपर-ऊपर की नहीं भीतरी बात करनी चाहिये। आनंद बाहर नहीं, भीतर है। आँख के अभाव में, ज्ञान के अभाव में भीतरी दृश्य का अवलोकन नहीं हो पा रहा। आत्मा का वैभव इस भव में रचे-पचे होने के कारण लुटा हुआ है।

दर्पण बहुत उज्ज्वल है, बहुत साफ है, ठीक है, लेकिन अपना मुख, उसमें जो प्रतिबिम्बित हुआ है, उसका भी उज्ज्वल होना महत्वपूर्ण पहले हैं, दर्पण की धूल हम हटाते हैं, साफ करते हैं, उज्ज्वल बनाते हैं इसलिये कि अपना मुख देख सकें। अपने आप को देखना मुख्य उद्देश्य है। दर्पण सहायक

है। इसी प्रकार परमात्म पद को हमें प्राप्त करना है तो जिसे केवल ज्ञान प्राप्त हो गया, उसकी वाणी को श्रवण करके धर्मामृत का पान करके हमें अपनी ओर आना है। हमें अपनी ओर यात्रा की दिशा मोड़ लेनी है जो बाहर हम भाग रहे हैं वह भीतर की ओर आना प्रारंभ हो जाये, तो सौभाग्य है।

युग के आदि में ऋषभनाथ भगवान को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ तो समवशरण की रचना हुई। भरत चक्रवर्ती को उनकी पूजा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था और प्रथम श्रोता-श्रावक के रूप में हजारों प्रश्न करके अपनी भीतरी जिज्ञासा शान्त की। आप बाहरी बात पूछते हैं। भविष्य की बात पूछ लेते हैं लेकिन चक्रवर्ती ने आत्मतत्त्व की गहराई की बात पूछी। जो चक्रवर्ती अभी रागी है, वीतरागी नहीं है। गृहस्थ है, सन्यासी नहीं है। असंयमी है, संयमी नहीं है लेकिन संयम की ओर संयम की गंध का आस्वादन करने के लिये भ्रमरवत् अपनी वृत्ति रखने वाला है। रागद्वेष में कमी करता हुआ आत्मा के रहस्य को सुनने का भाव रखने वाला है। यही विशेषता स्वभाव की ओर दृष्टि रखने वाले प्रत्येक मुमुक्षु की होनी चाहिये।

बंधुओ! आज ध्वजारोहण का कार्य संपन्न हुआ है। जो अभी पंचकल्याणक होंगे, आज उसकी भूमिका बन रही है। युग के आदि में कैसे कैसे यह पंचकल्याणक की घटना घटित हुई होगी, उसको आज से एक-एक दिन उसी रूप में चित्रित किया जायेगा। इसका मूल उद्देश्य यही है कि हम निर्मोही बनें। हम वीतरागी बनें। हम असंयम से संयम की ओर चलें और संयम के बल पर अपने भीतर बैठी हुई मोह की सत्ता पर प्रहार करते चले जायें। हमें मोहाविष्ट नहीं होना किन्तु मोह को वश में करना है। मन के काबू में नहीं रहना, मन को अपने काबू में रखना है। इद्रियों में वशीभूत नहीं होना, इन्द्रियों को अपने वश में रखना है। यह सब हमारे आधीन है।

यह सब हमारे साधन हैं और हम अपने साध्य स्वयं हैं। इस श्रद्धान के साथ हमें आगे बढ़ना चाहिये। धन्य हैं वह चक्रवर्ती का जीवन, जिनकी दृष्टि कितनी पैनी होगी कि अर्थ की ओर नहीं गये। काम के फल की ओर नहीं गये किन्तु एकमात्र केवलज्ञान से प्रकाशित सूर्य के दर्शन के लिये गये। यह चित्रण (उदाहरण) आप अपने सामने रखकर देखिये। आप कितने सांसारिक प्रलोभन से ग्रसित हैं। आप कितने संसार के लोभों से आकृष्ट हैं। आप कितने विषयों की ओर झुके हुये हैं। एक बात और ध्यान में लाइये कि छयान्नवे हजार रानियाँ जिनके साथ हैं, जिनके हजारों पुत्र और अपार सम्पदा, हाथी, घोड़े, नव

निधियाँ और चौदह रत्न हैं। बत्तीस हजार मुकुट बद्ध राजा और स्वर्ग से नीचे उतरकर आया हुआ दिव्य वैभव, जिनके चरणों में पड़ा है। जिन्हें आदि तीर्थंकर के आदि पुत्र होने का गौरव प्राप्त है लेकिन जब भीतरी बात आती है तो ऐसा लगता है कि किस कोने में बैठा हुआ है वह आत्मन् और वहाँ से पूछ रहा है कि तेरा वैभव क्या है? तेरा स्वभाव क्या है? तेरा वास्तविक रूप और लावण्य क्या है? और तू "पर" के ऊपर क्यों इतना मुग्ध हुआ है? ऐसा विचार आते ही कभी-कभी विस्मय हो जाता है। कभी-कभी खेद खिन्नता भी आ जाती है और कभी-कभी स्वभाव की ओर दृष्टिपात होने से यह सब बाहरी तरंगे हैं, लहरे हैं, ऐसा मालूम पड़ने लगता है।

स्वभाव तो यथावत् चल रहा है अनादि अनिधन। थोड़ा हवा का झोंका आ जाता है जो ध्वजा लहरदार हो जाती है। वस्तुतः ध्वजा लहरदार नहीं है। इसी प्रकार मोह का प्रवाह चलता है, झोंका आ जाता है तो संसारी आत्मा में, मैं सुखी हूँ, मैं दुखी हूँ, मैं राजा हूँ, मैं बड़ा हूँ, या मैं छोटा हूँ, आदि आदि अनेक लहरें, संकल्प-विकल्प उत्पन्न हो जाते हैं और जैसे ही तत्त्वज्ञान की भूमिका में अपने आपके स्वरूप पर दृष्टिपात कर लेते हैं तो वहाँ सरोवर तो सरोवर है, ध्वजा तो ध्वजा है, सब एकदम शान्त, निर्मल और निस्तरंग।

स्वभावनिष्ठ वह भगवान हमारे सामने हैं। उनमें आप स्वयं को देखें, वहां तरंगे नहीं है, मात्र अंतरंग हैं, शान्त स्तब्ध एकमात्र स्वभाव का साम्राज्य फैला है। जो अथाह अगम्य है। और वही स्वरूप की दृष्टि से देखा जाये तो हमारे पास भी विद्यमान है। उसे देखने की आवश्यकता है, उस पर श्रद्धान करके उसे प्राप्त करने की आवश्यकता है। भरत चक्रवर्ती सम्यग्दृष्टि हैं इसलिये उनके जीवन में इतनी गंभीरता और इतनी सादगी है जो अपार वैभव मिलने के उपरान्त भी कायम है।

थोड़ा सा वैभव मिल जाता है तो वही बात होती है कि अधजल गगरी छलकत जात या कहो उछलत जात। आधा भरा कुम्भ हो तो छलकता जाता है और वही जब भरपूर हो जाता है तो कुछ बोलता नहीं। स्वभाव-निष्ठ हो जाता है। "आवाज निकलने से अर्थात् व्याख्यान देने मात्र से स्वरूप का भान होता है"-यह गलत धारणा है। धारणा तो यह होनी चाहिये कि भरपूर होने के उपरांत ही स्वरूप का व्याख्यान प्रारंभ हो जाता है। स्वभाव हमेशा उमड़ता रहता है। उसे सप्रयास लाने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

जब सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा, भगवान के स्वरूप को जानने वाला मुमुक्षु इस स्वभाव को परिचय में लाता है। प्रभु के दर्शन से या इस प्रकार के धार्मिक आयोजनों के माध्यम से, तब उसे लगता है कि मेरे भीतर भी यही एकमात्र मानसरोवर है जिसमें अनन्तता छिपी हुई है और वह अपने इस शांत स्वभाव में ठहर जाता है किसी भी प्रकार की आकुलता नहीं होती, और इस प्रकार जितना-जितना अपने भीतर जाने का उपक्रम, प्रयास चलता है, उतनी-उतनी शांति मिलनी प्रारंभ हो जाती है। आप जितने सतह की ओर, बाहर की ओर आयेंगे उतनी ही आपको आकुलता सताने लगेगी। इन बाह्य आयोजनों के माध्यम से अंतर्मुखी दृष्टि आ जाये, यही उपलब्धि है।

दृष्टि के ऊपर ही हमारे भाव निर्भर हैं। जैसी हम दृष्टि बनाते हैं वैसा ही भावों के ऊपर प्रभाव पड़ता है। जैसे-जैसे अंतर्दृष्टि होती जाती है भाव भी अपने आप शांत होते चले जाते हैं। उबलता, उफनता हुआ दूध हानिकारक है लेकिन तपने के उपरांत वही जब स्वस्थ/शांत हो जाता है तो लाभप्रद हो जाता है। आज विश्व में कषायों की तपन और उद्वेग बढ़ता जा रहा है। एक व्यक्ति के जीवन में बढ़ता हुआ कषाय का उद्वेग विश्व में प्रलय लाने में कारण बन सकता है। वहीं यदि एक व्यक्ति का मन मानसरोवर की तरह शांत और निर्मल हो तो उसके तटों पर बहुत दूर-दूर से आये भव्य जन रूपी हंस बैठकर शांति का अनुभव कर सकते हैं। एक ही शांति अनेकों में क्षोभ को शांत करने के लिये पर्याप्त है और एक का क्षोभ अनेकों की शांति को भंग करने में निमित्त बन सकता है। इसलिये बंधुओ! स्वभाव की ओर दृष्टि लानी चाहिये जिससे भावों में शांति आये।

जिसके जीवन में स्वभाव से अभी परिचय नहीं हुआ है उसी के दौरान में आकुलता होती है। एक हाथी उन्मत्त हो जाये, स्वभाव से च्युत हो जाये तो उसके सामने खड़े होना संभव नहीं है, लेकिन जब वह अपने आप में शांत हो जाता है और अपनी मंद चाल से चलने लगता है तो बालक और बूढ़े सभी उसके सामने नृत्य करने लग जाते हैं। उस पर बैठ भी जाते हैं। स्वस्थ ओर उन्मत्त हाथी-यह दोनों कषायों के उपशमन और उद्वेग के प्रतीक हैं जो स्वभाव से अपरिचित है, वह प्रलय में कारण बनता है और जो स्वभाव में लीन है तो उस लय में अनंत जीव अपना कल्याण कर लेते हैं।

धर्म का प्रवाह आज का नहीं। जब से संसार है तब से अबाध चल रहा है। पूरे के पूरे संसार का कल्याण हो, ऐसी भावना भायी जाये तो आज भी ऐसी लहर उत्पन्न हो सकती है जो हमारे कल्याण में निमित्त बन सकती है।

सर्व कल्याण की पवित्र भावना भाने वाले, वे आर्य, वे सद्पुरुष, वे महामानव युग के आदि में ऐसे कार्य कर गये जो आज भी लोगों के लिये आदर्श बने हुये हैं। आदर्श का एक अर्थ दर्पण भी होता है। दर्पण में देखकर, आदर्श (भगवान) के दर्शन करके हमें ज्ञात हो जाता है कि हमारा कर्त्तव्य क्या है? हमारा स्वभाव क्या है? हमारे प्रभु कौन हैं? और हमारे लिये उन्होंने क्या संदेश दिया है। इतना यदि हम समझ लें तो जीवन कृतकृत्य हो जायेगा।

आज इस पंचमकाल में भी कृतकृत्यता का अनुभव कर सकते हैं क्योंकि अलौकिक कार्य की शुरुआत में भी तृप्ति का अनुभव होता है। आम जब पक जाते हैं तो रस निकालते हैं, पीते हैं, तृप्ति मिलती है। यह तो ठीक है, लेकिन जिसे अधपके/गदरे आम आप बोलते हैं उनका अपने आप में अलग स्वाद होता है। खटमिट्ठा भले ही रहता है पर वह भी तृप्तिकर लगता है। इसी प्रकार तृप्ति का अनुभव मुक्ति में तो यह आत्मा करेगी ही लेकिन जिस समय वह सम्यक श्रद्धान के साथ मोक्षमार्ग पर अपने कदम रखता है उस समय मार्ग में भी उसे अलग आनंद और तृप्ति का अनुभव होता है।

जैसे घर में भोजन करो और वन में जाकर पिकनिक में भोजन करो तो उसका अलग आनंद आता है। भूख नहीं भी लगी हो तो खाने का मन हो जाता है। यह क्यों होता है? क्योंकि वातावरण चेन्ज होने से भावों में भी अन्तर आ जाता है। इसी प्रकार जिन्हें केवलज्ञान हो गया हो उसकी छांव में जाकर उनके प्रवचन सुनने और दर्शन करने से जो एक तृप्ति का अनुभव होता है वह भी अपने आप में अलौकिक है।

बंधुओ! नदी/सरितायें सागर से मिलने को आतुर हो जाती हैं लेकिन बात ऐसी है कि सागर भी मिलने को आतुर था आज। अभी-अभी हमने देखा था। सागर तटस्थ नहीं था, बह रहा था। बहता हुआ सागर कौन सा है यहाँ, और कहाँ जाकर मिलना चाहता है? यह निश्चित है कि सागर यदि बहता है तो वह मीठा हो जाता है। यदि तटस्थ रहता है तो प्रसिद्ध है कि खारा तो वह है ही। बहता हुआ सागर यही है कि सारा सागर-नगर धर्म की ओर बह रहा है। धर्मामृत को पीने के लिये आतुर है। यही तो वे क्षण हैं जब आबालवृद्ध हर्षित होकर उसमें डूब जाते हैं। यह क्षण बहुत दुर्लभ होते हैं। यह पैसे खर्च करने से नहीं, किसी व्यक्ति विशेष को आमंत्रित करने से नहीं, कोई मेवा-मिष्ठान्न खाने से भी नहीं किन्तु भावों की निर्मलता से आते हैं।

जब आप अपने आपको/अपने अहंकार को भूल जाते हैं और मात्र आदर्श सामने रह जाता है और उसी में लीनता आ जाती है तो सभी का मन उल्लास से नाचने लग जाता है। युवकों और बालकों के साथ वृद्ध भी झूमने लगते हैं। दादाजी के पैर भी नाती के साथ नृत्य के लिये उठ जाते हैं। हमारी अहंकार वृत्ति, हमारी दीनता, हीनता, हमारी जो भी कमियां हैं, सारी की सारी समाप्त हो जाती है। धर्म में लीनता जब आती है तो दीनता-हीनता चली जाती है। अभी विषयों में आपकी लीनता है इसलिये आप दीनहीन बनते जा रहे हैं। अहंकारी बनते जा रहे हैं।

जब हम देखते हैं उस अपार को और विराट की ओर दृष्टिपात करते हैं तब अपने आप की लघुता हमें प्रतीत हो जाती है। जब सागर में मिलने के लिये बड़ी गंगा, सिंधु, ब्रह्मपुत्र जैसी नदियां जिनमें बड़े-बड़े जहाज चलते हैं, मिलने के लिये आ जाती हैं। उस समय अपने आपको देखती है तो बहुत पतली, बहुत छोटी, नहीं के बराबर मालूम पड़ती है। अपारता का दर्शन इसी प्रकार हमें भी करना है।

इस अपारता के माध्यम से ही हम पार पा जायेंगे। हमारी लघुता समाप्त जो जायेगी उस विराटता में। धन्य हैं वे प्रभु जिन्होंने हमारे अधूरे/अपूर्ण व्यक्तित्व को पूर्ण होने का संदेश दे दिया। उनका दिया उजाला हम लोगों के लिये पथ प्रदर्शक बन गया।

अंत में इतना ही कहना चाहूंगा कि चक्रवर्ती के समान भावना हमारे/आप लोगों के जीवन में भी आये। आज जो स्थिति है वह कर्म के उदय में है, उसमें रचे-पचे नहीं, यथावत् उसको देखने का प्रयास करें। पुरुषार्थ अधिक से अधिक आप करें। अर्थ के क्षेत्र में, काम पुरुषार्थ के क्षेत्र में ही नहीं बल्कि धर्म और मोक्ष पुरुषार्थ को अपने सामने रखकर पुरुषार्थशील बने। जिस महान पुरुषार्थ के फलस्वरूप ऋषभनाथ भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हुआ उसी प्रकार जीवन में भी वह शुभ घडी आयेगी, ऐसा सत्-पुरुषार्थ हम करें जिसके द्वारा कैवल्य की उपलब्धि हो। धर्म की ध्वजा फहराती रहे।

श्रेष्ठ संस्कार

सुनते हैं कई प्रकार के मोती होते हैं। जल की बूंदें मोती के रूप में परिणत हो जाती हैं। वह जल की बूँदे धूल में मिलकर अपने आप के जीवन को समाप्त न करके एक मोती का रूप धारण कर लेती है तो वह कंठहार बन जाती है। कभी सोचा आपने कि जब जल मोती बन सकता है तो जो अविरल धारा बहती रहती है वर्षा ऋतु में, वह जल मोती का रूप धारण क्यों नहीं करता। उपादान जल है तो वह मोती के रूप में परिवर्तित हो जाये लेकिन बिना निमित्त के ऐसा संभव नहीं है। इसलिए निमित्त की सार्थकता को ओझल नहीं किया जा सकता।

मोती एकेन्द्रिय है, पृथ्वीकायिक है और जल भी एकेन्द्रिय है, जलकायिक है लेकिन जब सीप जल की बूंदों को स्वीकार कर लेता है तभी वे मोती का रूप धारण करती है। निमित्त की यही विशेषता है। उपादान जो भीतर की शक्ति है उसका प्रस्फुटन उसकी अभिव्यक्ति सामने तब आती है जबकि योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदि निमित्त जुट जाते हैं। अन्यथा वही बूंदें नीम की जड़ में चली जाती हैं तो कटुता का अनुभव करने लग जाती है। बबूल की जड़ में चली जाती है तो कांटे का रूप धारण कर लेती हैं। सर्प के मुख को प्राप्त हुई वही बूंद हलाहल का रूप धारण कर लेती है। सूर्य के ताप को वह प्राप्त कर लेती है तो वाष्प बनकर उड़ जाती है। वस्तु का परिणमन बड़ी अद्वितीय शक्ति को लेकर चलता रहता है।

आज जो जीव गर्भ में आया है वह कहाँ से आया? वह क्यों तीर्थंकर बना और कैसे? किन परिणामों के द्वारा माता-पिता ने उसे धारण किया? तो उत्तर में यही कहा जायेगा कि यह सब संस्कार की देन है। आज यह दिन भी संस्कार का दिन है। एक ऐसा जीव सीप में प्रवेश करेगा तो कालान्तर में मोती का रूप धारण कर लेता है। इसकी अधिकारी वही सीप होगी जो जल को बड़ी सावधानी से ग्रहण करती है। प्रत्येक सीप में मोती बने, यह नियम नहीं है। स्वाति नक्षत्र में जब कोई सीप अपना मुख खोलती है और ऊपर मेघों से गिरती जल की बूंद भीतर प्रवेश करती है तब सीप अपने मुख को बंद करके सागर के नीचे चली जाती है। ऐसा वह नैसर्गिक संस्कार का कार्य होता है। परिष्कार का कार्य होता है तभी मोती की उपलब्धि होती है।

आज परिष्कार की बात तो चलती है लेकिन संस्कार की बात नहीं होती। एक सीप के संस्कार को देखो। कैसा संस्कार डाला भीतर कि वह बाहर का जल जो खारा था, भीतर वही मोती का रूप धारण कर गया। जल का उपादान, इस भीतरी संस्कार के कारण मोती के रूप में परिवर्तित हो गया। जब किसी के लिये बुखार टाइफाइड हो जाता है जिसे हिन्दी में मोतीझरा बोलते हैं तो एक दो मोती पानी में उबालकर दिये जाते हैं तो वह पानी भीतर के बुखार को निकालने में सक्षम हो जाता है। मोती से मोतीझरा बुखार भी झर जाता है। साधारण पानी में यह गुण नहीं होता। मोती के द्वारा संस्कारित होने पर यह क्षमता आ जाती है।

इसी प्रकार तीर्थंकर होने वाले जीव को अपने गर्भ में प्रवेश होने के पूर्व में माता-पिता ने कितनी निर्मल भावना भायी होगी। तीन लोक का कल्याण जिसके ऊपर निर्धारित है ऐसा वह महान् जीव आने वाला है। उसे आधार देने वाला भी कितना कल्याणकारी होगा। यह बात बहुत कम लोगों को समझ में आती है। लेकिन जो वस्तु के उद्गम स्थान की ओर दृष्टिपात करते हैं तो ज्ञात होता है कि वर्तमान, वर्धमान तभी बनता है जब अतीत भी उज्ज्वल होता है। जड़ें मजबूत होती हैं तभी वृक्ष विकास पाता है। संस्कार की ओर अर्थात् मूलभूत जड़ों की ओर भी देखना आवश्यक है। आज तो कलम (क्रास वीड) का युग आ गया। आम की गुठली नहीं बोयी जाती। आम की कलम लगा दी जाती है। संस्कार नहीं दिया जाता, मात्र बाहर से थोड़ा परिष्कार कर दिया जाता है। आम भले ही बहुत आते हों लेकिन खाने का स्वाद और पौष्टिकता नहीं मिल पाती।

जो पहले से संस्कार डालना प्रारंभ कर देता है भावों के माध्यम से कि हमारे निमित्त से कोई लोकोत्तर जीव आ जावे जो तीन लोक को दिशा बोध दे सकें। तो हम धन्य हो जायेंगे। यह भी एक उज्ज्वल भावना है। धन्य हैं वह माता और वह पिता। आप लोग तो आज क्या भावना करते हैं कि हमारा लड़का वकील बन जाये, इंजीनियर बन जाये, डाक्टर बन जाये, प्रोफेसर बन जाये। कुछ भी बन जाये लेकिन कमाऊ बन जाये, साधु न बने जाये (हंसी)।

यैः शान्तरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं–हे भगवान् शांति के जितने भी परमाणु थे आपकी देह उनके द्वारा निर्मित हो गयी। आप इसी से अद्भुत हैं। ऐसी शक्ति के परमाणुओं से निर्मित देह की भावना भाने वाले विरले ही माता-पिता होते हैं। भारतीय संस्कृति में प्रत्येक क्षण संस्कार के साथ बीते,

इस बात को महत्व दिया गया है। प्रत्येक क्रिया संस्कार के साथ चलती है। विवाह संस्कार मात्र वासना की पूर्ति के लिये नहीं है बल्कि संतान की उत्पत्ति और धर्म की परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये किया जाता है। ऐसा महापुराणादि ग्रन्थों में आप देख सकते हैं। कब कैसे संस्कार डाले जायें। मन वचन काय की प्रवृत्ति कैसी रखी जाये, कितने बार खाया जाये, कब खाया जाये, क्या खाया जाये और क्यों खाया जाये। इन सभी बातों की सावधानी रखी जाती है।

संस्कार ऐसे हों कि जिससे आने वाली संतान धार्मिक/सात्विक जीवन का संस्कार लेकर आये। उसका तामसिकता की ओर झुकाव न हो। जब विभिन्न प्रकार के सुगंधित फूलों की प्रजातियों को पैदा करते समय आवश्यक हवा, पानी और वातावरण आदि की सावधानी रखी जाती है तो आप विचार करें कि जिसके द्वारा तीन लोक में सुंगधमय वातावरण बनेगा ऐसा जीव यहाँ गर्भ में आया है तो कितनी सावधानी रखी गयी होगी। कैसे अद्भुत पवित्र संस्कार किये गये होंगे। तीन लोक के सकल चराचर पदार्थों को अपने में धारण करने की क्षमता जिसके ज्ञान में आ जाये, जो प्राणिमात्र के दुख दारिद्रय को दूर करने में निमित्त बन जाये। यह सब संस्कार का ही प्रतिफल है।

साधना अभिशाप को वरदान बना देती है। भावना पाषाण को भगवान बना देती है। पर आज का युग स्वयं एकदम भगवान बनना चाहता है। साधना के नाम पर कुछ करना नहीं चाहता। महान आत्माओं के चरणों में झुकना नहीं चाहता। सब समय के भरोसे छोड़ देता है। बंधुओ! साधना भगवान बनने से पूर्व की बात है और अनिवार्य है। भगवान बनने के उपरान्त साधना नहीं की जाती। फल पक जाने के उपरान्त पानी का सिंचन नहीं किया जाता। साधना से ही संस्कार पड़ते हैं।

पहले मंत्रों के द्वारा सहज ही कार्य सिद्ध हो जाते थे, इसका कारण है कि मंत्र सिद्ध होने के उपरान्त ही कार्य सिद्ध हो जाता है। मंत्र सिद्ध न हो, मंत्र की साधना न हो तो मंत्र पढ़ने मात्र से कार्य संपन्न नहीं होता। साधना पहले आवश्यक है। जीवन को वासना से दूर रखने साधना की जाये तभी आने वाली संतान, आत्मा की उपासना करने में सक्षम होगी, उपादान की योग्यता के साथ-साथ निमित्त का भी प्रभाव पड़ता है।

गांधी जी ने नहीं कहा लेकिन लोगों ने स्वयं उन्हें महात्मा गांधी कहा। वे तो अंत तक यही करते रहे कि मेरी महानता तो माता-पिता के ऊपर निर्धारित है। उन्होंने ही मेरे ऊपर संस्कार डाले। विदेश में जा रहे हो तो ध्यान रखना, माँस-मदिरा का सेवन मत करना। यह गांधी जी के जीवन की घटना है। विदेश जाते समय उनकी माता ने यह शपथ दिलायी थी।

आयुर्वेद में औषधियों की शक्ति भावना पर ही आधारित है। जितना ज्यादा औषधि को भावित किया गया होगा, भावना दी गयी होगी, पुट दिया गया होगा उतनी ही वह शक्तिशाली होगी। जैनाचार्यों ने इस शक्ति को अनुभाग कहा है। जिस भावना के साथ जो कर्म आ जाता है उनमें ऐसी शक्ति पड़ जाती है कि दुनिया की कोई शक्ति आ जाये पर उसे समाप्त नहीं कर सकती। पुण्य कर्म की स्थिति तो ऐसी है कि यदि उसे मिटाना/हटाना चाहो तो जितना उससे बचने के लिये जायेंगे उतनी ही उसकी शक्ति और बढ़ जायेगी। पापों से मुक्त होकर जो पुण्य में लग जाते हैं और पुण्य के फल का त्याग करते जाते हैं उन्हें और अधिक पुण्य का संचय होने लगता है।

स्वर्ण यदि असली हो तो उसको आप कितनी ही बार कसौटी पर परखो वह खरा ही उतरेगा। उसे जितना तपाओ, समाप्त करना चाहो वह उतना ही उज्ज्वल हो जाता है। कंचन तो कंचन ही है यह भावना का फल है। साधारण पीपल नहीं, यदि चौंसठ प्रहरी पीपल हो तो क्षय रोग को भी दूर करने में सक्षम होता है। चौंसठ प्रहर तक मूसल की चोट जिस पीपल के ऊपर पड़ती है वह पीपल आयुर्वेद में चौंसठ प्रहरी पीपल कहलाता है। पल-पल उस पीपल ने चौंसठ प्रहर के प्रहारों को अपने में पी लिया। यह संस्कारित हो गया। आप मशीन के द्वारा एक घंटे में उतनी ही चोट डाल दो वह शक्ति नहीं आयेगी, ध्यान रखना, क्योंकि वहाँ चोट तो जुड़ी है लेकिन भावना नहीं जुड़ी। एक में व्यवसाय है, एक में साधना स्वाध्याय है।

बंधुओ! तीन लोक का दारिद्रय जो मोह के कारण है उसे यदि दूर करना चाहते हो तो वित्त के द्वारा नहीं, धन संपदा के द्वारा नहीं बल्कि चेतन भावों के द्वारा ही, वीतराग भावों के द्वारा ही दूर किया जा सकता है। लोक-कल्याण की भावना का यह संस्कार अद्‌भुत है। धन्य है वह माता-पिता जो अपनी संतान में ऐसे भाव पैदा करने के लिये प्रयास करते हैं। हमें मन-वचन-कार्य की ऐसी चेष्टा करनी चाहिये ताकि विश्व का कल्याण हो।

भावों में ऐसी उज्ज्वलता लायें जैसे मोती के लिये सीप प्रयासरत है। सीप में मोती भले ही एक हो। जैसे तीर्थंकर अपने माता-पिता के एक ही होते हैं पर सारा लोक आकृष्ट हो जाता है। एक मोती ही पर्याप्त है। एक तीर्थंकर की योग्यता वाला पुत्र ही पर्याप्त है। हमारा पुत्र हमारे लिये ही नहीं बल्कि विश्व के कल्याण के लिये हो, ऐसी भावना बिरला ही कोई कर सकता है। इतना ही नहीं, उस पुत्र को लोक के लिये समर्पित करके आनंदित भी होता है। उसे स्वयं से अधिक समझदार मानता है। नाभिराज और माता मरुदेवी किसी के कुछ पूछने पर उसे समाधान के लिये अपने पुत्र आदिकुमार के पास भेज दिया करते थे। यहाँ पर्याय बुद्धि छोड़नी पड़ती है। छोटा/बड़ा कोई उम्र से या शरीर से नहीं मापा जाता, अंतरंग योग्यता देखनी चाहिये।

आप इन कार्यक्रमों को लौकिक कार्यक्रम न समझें। किन्तु पारलौकिक आत्मा की ओर ले जाने के लिये प्रतीक मानें, प्रेरणा लें। आप भी माता-पिता हैं, आपके भी संतान है उसे संस्कारित करें। अंतर्दृष्टि दे और स्वयं भी संस्कारित हो जिससे सबका भविष्य उज्ज्वल बनें।

एक दीप हजारों दीपक जलाता है। एक दीपक के साथ बुझे हुये हजार दीपक अपने आप जल जाते हैं। परिश्रम की आवश्यकता नहीं होती और एक वह भी दीपक होता है जो रत्न दीपक कहलाता है। इस माटी के दीपक में तो बाती होती है, तेल डाला जाता है और वह बुझ भी सकता है लेकिन रत्न दीपक के लिये बाती और तेल की आवश्यकता नहीं होती वह हवा के द्वारा बुझता भी नहीं है। किसी को जलाता नहीं, स्वयं जलता रहता है ऐसे रत्न दीपक से भी श्रेष्ठ दीपक गर्भ में आ चुका है। उसकी पात्रता को ध्यान में रखकर कल पूर्वपीठिका के रूप में सीप और मोती की बात कही थी।

आज उस श्रेष्ठ दीपक की बात करना चाहता हूँ जिसके गर्भ में आते ही सब ओर शांति का वातावरण बन जाता है। मंगल छा जाता है और आत्मा का महात्म्य सुनाई देने लगता है। एक विकासमान दीपक एक प्रकाशमान दीपक जो विश्व को शान्ति प्रदान करने वाला है, वह गर्भ में भले ही है लेकिन अपनी प्रभा को बाहर बिखेर रहा है। कैसी अद्‌भुत भावना पूर्व जीवन में भायी होगी कि जो आज गर्भावस्था में रहकर भी विश्वप्रिय है। सब आतुर हैं कि कब भगवान का दर्शन होगा? पर्याय की दृष्टि से देखें तो वे कुमार की तरह जन्म लेंगे, अभी भगवान नहीं हैं लेकिन अंतर्दृष्टि से देखा जाये तो प्रत्येक आत्मा भगवान है।

एक ऐसी आत्मा जो इसी पर्याय से अपनी आत्मा को जगमगायेगी। जिसके माध्यम से तीन लोक अपने आप के स्वरूप को पहचानेगा। ऐसी आत्मा/परमात्मा के प्रभाव से उनके परिवार का ही नहीं, सभी का दारिद्र दूर हो जाता है मात्र शारीरिक रोग ही नहीं, भव रोग का भी अंत होने लग जाता है और दिन-रात शुद्धात्मा की चर्चा/अर्चा प्रारंभ हो जाती है। पूरा का पूरा परिवार राग से वीतरागता की ओर चला जाता है। यह सब पूर्व भव में इस जीव के द्वारा स्व और पर के कल्याण की भावना का परिणाम है।

इस तरह जिस आत्मा का गर्भ में आना कल्याणकारी होता है और इतना ही नहीं बल्कि अब इस जीव को दुबारा गर्भ में नहीं आना पड़ेगा और न ही उसकी माँ को अधिक गर्भ धारण करने होंगे, वह भी एकाध दो भव में मुक्ति का भाजन बनेगी। इसलिये भी यह गर्भ कल्याण रूप है। गर्भ में आना भी कल्याणक के रूप में मनाया जाता है।

किसी कवि ने छोटी सी कविता लिखी है कि "मैं एक अव्यस्क वृद्ध हूँ।" कविता का रहस्य अपने आप में बहुत है। अभी जीव गर्भ में आया है लेकिन उसका अनुभव वृद्धत्व को प्राप्त है, जैसे दीपक छोटा सा लगता है लेकिन रात्रि के साम्राज्य को छिन्न भिन्न करने में सक्षम है। फिर यह कोई सामान्य दीपक नहीं है जिसके तले अंधेरा हो। यह सामान्य रत्न-दीपक भी नहीं है बल्कि विशिष्ट चैतन्य रत्न दीपक है। इसकी गरिमा शब्दों में नहीं कही जा सकती। शब्द बहुत बौने पड़ जाते हैं। शब्दों में विराटता का वर्णन करने की सामर्थ्य नहीं है लेकिन भावों की उमड़न रुक नहीं पाती जिससे बार-बार गुणानुवाद का मन हो जाता है, जैसे सूर्य की आरती दीपक से की जाती है।

हीरा बहुमूल्य होता है लेकिन आत्मतत्त्व रूपी हीरा तो अमूल्य है, अद्वितीय है। इस एक आत्म तत्त्व के प्रति अपने आपको समर्पित करने वाली यह महान् आत्मा धन्य है जिसने अतीत में भी रत्नत्रय की साधना की, और आगे भी रत्नत्रय की आराधना करके मुक्ति को पायेगी। जन्म के उपरान्त देखने में भले ही कोमल बालक दिखेगा लेकिन तीन लोक का पालक होगा। आज का प्रत्येक बालक कल का नागरिक बन सकता है लेकिन प्रत्येक नागरिक राष्ट्रपिता नहीं बन सकता। उसके लिये अलग योग्यता चाहिये। फिर यह गर्भस्थ शिशु तो मात्र राष्ट्रपिता नहीं बल्कि तीन लोक का नाथ बनने वाला है उसकी योग्यता कितनी होगी। यह इस अवसर पर विचार करना चाहिये।

आज की यह धर्मसभा गर्भस्थ आत्मा का कल्याणक मनाने के लिये आतुर है वहीं दूसरी ओर विज्ञान के माध्यम से यह परीक्षा की जाती है कि गर्भस्थ आत्मा लड़का है या लड़की है। यदि लड़की है तो हटा दो। लड़का है तो रहने दो। कौन-से ऐसे संविधान में लिखा है, किस देश की संस्कृति इस जघन्य अपराध को इस पाप को ठीक मानती है। कुछ समझ में नहीं आ रहा। यह कहाँ का न्याय है, यह तो अन्याय है। यह विज्ञान का दुरुपयोग है। आप धर्म की बात सुनना चाहते हैं लेकिन गर्भस्थ शिशु की पीड़ा को नहीं सुनना चाहते।

गर्भस्थ शिशु पर किये गये इंजेक्शन और दवाईयों के प्रयोग से उसे जो मर्मान्तक पीड़ा होती होगी वह आप देखना नहीं चाहते। ऐसा जघन्य काम हो रहा है इस भारत वर्ष में और लोग चुप हैं। दंड की बात दूर है धन के द्वारा पुरस्कृत किया जा रहा है। मैं आलोचना नहीं कर रहा हूँ आपके लोचन खोलना चाह रहा हूँ। आज गर्भ कल्याणक के अवसर पर इस युग की यह समस्या विचारणीय है।

क्षत्रियों का धर्म तो यही है कि अबोध बालक-बालिका पर, उन्मत्त/पागल व्यक्ति पर, नारी के ऊपर और निःशस्त्र योद्धा के ऊपर प्रहार कभी न किया जाये। लेकिन आज क्या हो रहा है? दोनों कुलों के यश को वृद्धिगत करने वाली बालिका पर प्रहार किया जा रहा है। नारी जगत ने इतिहास में कितना कुछ किया है और आगे भी करने की क्षमता रखती है। यह किसी से छिपा नहीं है। जीव का परिणमन है। शरीर को लेकर कर्म प्रकृति को लेकर अंतर संभव है लेकिन आत्मा तो सभी में वही है। अनंत शक्तिवान है। बंधुओ, सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया अर्थात् सभी जीव अंतर्दृष्टि से देखा जाये तो शुद्धत्व को प्राप्त करने की क्षमता वाले हैं। अपने आपको सम्यग्दृष्टि मानने वालो थोड़ा तो विचार करो।

यदि आप जीवन प्रदान नहीं कर सकते तो आपको जीवन लेने का क्या अधिकार है? वह जीव तो स्वयं जीवन लेकर आया है। उसका कल्याण वह स्वयं करेगा। भगवान महावीर की धरती पर, भगवान ऋषभनाथ की धरती पर, भगवान राम की धरती पर, माता मरुदेवी और राजा नाभिराज की धरती पर यह जघन्य कृत्य ठीक नहीं है। इसका समर्थन शासन क्यों करता है? शासन तो आपके हाथ में है। प्रजातंत्र है, आप ही शासक हैं और शासित भी आपको होना है। लोकतंत्र में "टके सेर भाजी टके सेर खाजा, अंधेर नगरी

और चौपट राजा" यह नहीं चलेगा। आत्म गौरव होना चाहिये। स्वाभिमान होना चाहिये। अपनी उज्ज्वल संस्कृति का ख्याल होना चाहिये।

ऐसा आज कोई अहिंसा को मानने वाला जैन क्यों नहीं है जो खुले आम निडरता से इसे बंद कराने का प्रयास करे/होना चाहिये। आप सोचते हैं, अकेले धार्मिक कार्य करने से पुण्य संचित होता है ऐसा एकान्त नहीं है। पुण्य संचय तो सादगी पूर्ण जीवन से, संयत जीवन जीने से होता है। दु:शासन का शासन भी भंग हो गया था, द्रोपदी के आत्मानुशासन के सामने। भरी सभा में दु:शासन ने द्रोपदी को निरावरित करना चाहा था लेकिन पसीना-पसीना हो गया था पर वस्त्र हट नहीं पाया। ऐसी शीलवान द्रोपदी की कथा आप पढ़ते हैं और गर्भस्थ बालक पर प्रहार करते हैं कुछ समझ में नहीं आता।

गर्भस्थ शिशु का भविष्य कैसा है। यह कोई नहीं जानता। क्या पता कौन सा शिशु महात्मा गांधी बन जाये। कौन अकलंक निकलंक जैसा धर्म रक्षक बन जाए। कौन जिनसेन स्वामी जैसा महान् बन जाये और कौन बालिका चंदनबाला जैसी आर्यिका बनकर संघ का नेतृत्व संभालकर युग को संबोधित करे। आपके सागर नगर से क्षमा सागर जी, सुधासागर जी, जैसे मुनि निकले हैं और दृढ़मती जैसी आर्यिका गणिनी भी है जिसके अनुशासन में पच्चीस, तीस-तीस आर्यिकायें हैं।

बंधुओ! सब अपने-अपने कर्म लेकर आते हैं। संसार में किसी का पालन-पोषण हमें करना है—ऐसा अहंकार व्यर्थ है। कर्म सिद्धान्त पर अगर आपको विश्वास है तो संकल्प कीजिये कि हम अपने जीवनकाल में कभी गर्भस्थ शिशु की हत्या नहीं होने देंगे। जीवनदान बड़ा महत्वपूर्ण दान है। एक महान आत्मा का जन्म ही सारे विश्व में उजाला करने के लिये पर्याप्त है। धर्मात्मा यदि बचा रहेगा तो सारी प्रजा धर्ममय बनी रहेगी। सब ओर सुख शांति होगी।

□□

जन्म-मरण से परे

संत का नाम सुना था। आज उनके चरणों में आकर वह अबला रो रही है। अपने दुख की अभिव्यक्ति कर रही है। वह क्या मांग रही है? अभी यह भाव खुल नहीं पाया है। वह कह रही है कि जब अपने दिया था तो बीच में ही वापिस क्यों ले लिया। एक अबला के साथ यह तो अन्याय हुआ है। हम कुंछ और नहीं चाहते जैसा आपने दिया था वैसा ही वापिस कर दीजिये। क्योंकि हमने सुना है आप दयालु हैं। प्राणों की रक्षा करने वाले हैं। पतितों के उद्धारक हैं और इस तरह अपना दुख कहकर दुखी होकर वह अबला वहीं गिर पड़ी।

संत जी उसका दुख समझ रहे हैं उसका एक ही बेटा था। आज अकस्मात् वह मरण को प्राप्त हो गया है। यही दुख का कारण है। संत जी ने उसे सांत्वना दी लेकिन अकेले शब्दों से शान्ति कहाँ मिलती है? वह कहने लगी कि आप तो हमारे बेटे को वापिस दिला दो। संत जी ने अब थोड़ा मुस्कराकर कहा-बिल्कुल ठीक है। पूर्ति हो जायेगी। बेटा मिल जायेगा। लेकिन सारा काम विधिवत् होगा। विधि को मत भूलो। सबके लिये जो रास्ता है वही तुम्हें भी बताता हूँ।

वह अबला तैयार हो गयी कि बताओ क्या करना है? अपने बेटे के लिये सब कुछ करने को तैयार हूँ। बेटा जीवित होना चाहिये। संत जी ने कहा-ऐसा करो कि अपने अड़ोस-पड़ोस में जाकर कुछ सरसों के दाने लेकर आना। मैं सब ठीक कर दूँगा। इतना सुनते ही वह बुढ़िया अबला जाने को तैयार हो गयी तो संत जी ने रोककर कहा कि सुनो। मैं भूला जा रहा था एक शर्त है कि जिस घर से सरसों लेना वहाँ पूछ लेना कि तुम्हारे घर में कोई मरा तो नहीं है। जहाँ कोई कभी नहीं मरा हो वहाँ से सरसों ले आना बस।

अबला ने सोचा कि दुनिया में एक मैं ही दुखी हूँ और शेष सारे के सारे सुखी हैं। मरण का दुख मुझे ही है। शेष किसी के यहाँ कोई नहीं मरा और वह जल्दी से पड़ोस में गयी और जाकर कहा कि संतजी ने कहा कि तुम्हारा बेटा वापिस मिल जायेगा लेकिन एक मुट्ठी सरसों के दाने लेकर आओ। तुम मुझे मुट्ठी भर सरसों दे दो और पड़ोसिन से सरसों लेकर वह

जल्दी-जल्दी चार कदम भाग गई, पुनः वापिस लौटकर आयी और कहा कि पहले यह तो बताओ कि तुम्हारे घर में कोई मरा तो नहीं। तो पड़ोसिन बोली-अभी फिलहाल कोई नहीं मरा लेकिन तीन वर्ष पहले आज के दिन ही उनकी मृत्यु हो गयी थी! अरे, तब ऐसे सरसों तो ठीक नहीं, ऐसा सोचकर वह बुढ़िया सरसों वापिस करके दूसरी सहेली के पास चली जाती है।

वहाँ भी ऐसा ही हुआ। सरसों लेकर चार कदम आगे बढ़ी कि गुरू के वचन याद आ गये कि जहाँ कोई मरण को प्राप्त न हुआ हो वहाँ से सरसों लाना।

बंधुओ! मोक्षमार्ग में भी गुरुओं के वचन हमेशा-हमेशा काम में आते हैं।

उवयरणं जिणमग्गे लिंगं जहजादरूवमिदि भणिदं।
गुरुवयणं पिय विणओ, सुत्तजझाणं च निद्दिठं॥

आचार्य कुंदकुंद स्वामी ने हम लोगों के लिये, जो मोक्षमार्ग में आरूढ़ हैं, कहा है कि मोक्षमार्ग में चार बातों का ध्यान रखना तो कोई तकलीफ नहीं होगी। पहली बात यथाजात रूप अर्थात् जन्म के समय जैसा बाहरी और भीतरी रूप रहता है। बाहर भी वस्त्र नहीं, भीतर भी वस्त्र नहीं। वैसा ही निर्ग्रंथ निर्विकार रूप होना चाहिये।

पहले आठ-दस साल तक बच्चे निर्वस्त्र निर्विकार भाव से खेलते रहते थे। ऐसा सुनने में आता है कि ऐसे भी आचार्य हुये हैं जिन्होंने बालक अवस्था से लेकर मुनि बनने तक वस्त्र पहना ही नहीं और मुनि बनने के उपरांत तो निर्ग्रंथ रहे ही। आचार्य जिनसेन स्वामी के बारे में ऐसा आता है, दूसरी बात-गुरु वचन अर्थात् गुरु के वचनों का पालन करना। गुरुमंत्र का ध्यान रखना, शास्त्र तो समुद्र हैं, शास्त्र से ज्ञान बढ़ता है, लेकिन गुरु के वचन से ज्ञान के साथ अनुभव भी प्राप्त होता है। गुरु, शास्त्र का अध्ययन करके अपने पूर्व गुरु महाराज की अनुभूतियों को अपने जीवन में उतार करके और स्वयं की अनुभूतियों को उसमें मिलाकर देते हैं, जैसे-मां, बच्चे को दूध में मिश्री घोलकर पिलाती है और कुछ गाती-बहलाती भी जाती है।

तीसरी बात है -विनय, नम्रता, अभिमान का अभाव। यदि विनय गुण गुम गया, तो ध्यान रखना, शास्त्र-ज्ञान भी कार्यकारी नहीं होगा। अंत में रखा है शास्त्र का अध्ययन, चिंतन, मनन करते रहना, जिससे उपयोग में स्थिरता बनी रहे, मन की चंचलता मिट जाये। तो गुरुओं के द्वारा कहे गये वचन बड़े उपकारी हैं।

उस अबला बुढ़िया को सरसों मिलने से खुशी हो जाती लेकिन जैसे ही मालूम पड़ता कि इस घर में भी गमी हो गई है तो वह आगे बढ़ जाती। ऐसा करते-करते उस बुढ़िया को धीरे-धीरे आने लगी बात समझ में "अनागत कब मरण में, अतीत कब विस्मरण में ढल चुका पता नहीं, स्वसंवेदन यही है," संसार में इसी स्वसंवेदन के अभाव में संसारी प्राणी भटक रहा है। यहां कोई अमर बनकर नहीं आया। ऐसा सोचते-सोचते वह बुढ़िया संतजी के पास लौट आयी।

संतजी ने कहा- विलम्ब हो गया कोई बात नहीं। लाओ सरसों ले आयी। मैं तुम्हारा बेटा तुम्हें दे दूंगा। बुढ़िया बोली-संतजी, आज तो हमारी आंखें खुल गयीं। आपकी दवाई तो सच्ची दवाई है। आपने हमारा मार्ग प्रशस्त कर दिया। आपका उपकार ही महान उपकार है। मेरा बेटा जहाँ भी होगा, वहाँ अकेला नहीं होगा क्योंकि अड़ौसी-पड़ौसी और भी हैं जो पहले ही चले गये हैं। यह संसार है, यहाँ यह आना-जाना तो निरंतर चलता रहता है।

आप लोग 'सॅनराइज' कहते हैं। 'सनबर्थ' कोई नहीं कहता और सनसेट सभी कहते हैं लेकिन सॅनडेथ कोई नहीं कहता, यह कितनी अच्छी बात है। यह हमें वस्तुस्थिति की ओर, वास्तविकता की ओर ले जाने में बहुत सहायक है। सॅनराइज अर्थात् सूर्य का उदय होना और सनसेट अर्थात सूर्य का अन्त हो जाना। उदय होना, उगना कहा गया, उत्पन्न होना नहीं कहा गया। इसी प्रकार अस्त होना, डूबना कहा गया, समाप्त होना नहीं कहा गया। यही वास्तविकता है। आत्मा का जन्म नहीं होता और न ही मरण होता है। वह तो अजर-अमर है।

संसारी दशा में जीव और पुद्गल का अनादि संयोग है और पुद्गल तो पूरण गलन स्वभाव वाला होता है। कभी मिल जाता है, कभी बिखर जाता है। उसी को देखकर आत्मा के जनम-मरण की बात कह दी जाती है। केवलज्ञान के अभाव में अज्ञानी संसारी प्राणी शरीर के जन्म होने पर हर्षित होता है और मरण में विषाद करता है और यही अज्ञानता संसार में भटकने में कारण बनती है।

आज यह बात वैज्ञानिक लोग भी स्वीकार करते हैं कि जो नहीं है उसे उत्पन्न नहीं किया जा सकता और जो है उसका कभी नाश नहीं हो सकता, उसका रूपांतरण अवश्य हो सकता है। रूपांतर अर्थात् पर्याय का उत्पन्न होना या मिट जाना भले ही हो लेकिन वस्तु का नाश नहीं होता। बंधुओ! जो

पर्याय उत्पन्न हुई है, उसका मरण अनिवार्य है किन्तु ऐसा मरण आप धारण कर लो कि जिसके बाद पुनः मरण न हो। और ऐसी सिद्ध पर्याय को उत्पन्न कर लो जो अनंतकाल तक नाश को प्राप्त नहीं होती।

आज जिसका जन्म कल्याणक मनाया जा रहा है वह ऐसी आत्मा का जन्म है। शरीर के जन्म को हम आत्मा का जन्म न माने और न ही शरीर के मरण को अपना मरण माने बल्कि आत्मा के अजर-अमर स्वरूप को पहचानकर उसे प्राप्त करने के लिये कदम बढ़ायें। यही इस जन्म कल्याणक की उपलब्धि होगी।

□□

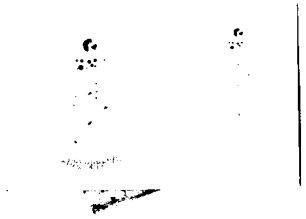

समत्त्व की साधना

समय अत्यल्प रह गया है। आज अभी-अभी भगवान की दीक्षा के उपरान्त आर्यिका दीक्षायें सम्पन्न हुई हैं। भगवान ऋषभदेव के समय जब भगवान का वहाँ दीक्षा-कल्याणक महोत्सव मनाया जा रहा है तो पूरी नगरी में उल्लास छाया हुआ है। सब अपने-अपने कर्त्तव्य में लगे हुए हैं। सबका मनोयोग उसी में लगा हुआ है। आज कैसा भावों का परिवर्तन होने जा रहा है? अभी तक तो आदि कुमार राजा सभी के स्वामी थे, अब अपने स्वयं के स्वामी बनने जा रहे हैं। द्रव्य, क्षेत्र और काल का परिवर्तन उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना भावों का परिवर्तन महत्वपूर्ण है। आज भावों के परिवर्तन का दिन है।

किसी को यह अच्छा भले ही न लगे (पराभिप्राय निवृत्तयशक्यत्वात् दूसरे के अभिप्राय का निवारण करना वैसे भी अशक्य है।) किन्तु मोक्षमार्ग में भावों की प्रधानता है। अभी तक राजसत्ता थी। दंडसंहिता चल रही थी। साम-दाम, दंड भेद की बात चलती थी किन्तु अब तो अभेद की यात्रा प्रारंभ हो रही है। अब कोई आज्ञा मांगे तो भी आज्ञा नहीं दी जायेगी। अब तो

'दुःखे-सुखे वैरिणी बंधु-वर्गे, योगेवियोगे भवने वने वा।
निराकृता शेष ममत्वबुद्धि, समं मनो मेस्तु सदापि नाथ॥'

अब तो सभी के प्रति ममत्वबुद्धि को छोड़कर आत्मा समत्व में लीनहोना चाह रही है। भीतर से वैराग्य उमड़ रहा है। यह घटना आत्मोन्नति के लिये प्रेरणादायी है। भारत की संस्कृति आज जीवित है तो इन्हीं आत्मोन्नति की घटनाओं के माध्यम से जीवित है। धन-सम्पदा के कारण नहीं। ज्ञान-विज्ञान के कारण नहीं बल्कि त्याग, तपस्या के कारण भारतभूमि महान् है।

वैभव तो "वै" अर्थात् निश्चय से "भव" यानी संसार ही है। इसलिये वैभव, वैरागी को नहीं चाहिये। उसे तो भव से दूर होने के लिये चरित्र-वृक्ष की छांव चाहिये है। 'स भव विभव हान्यै नोऽस्तु चारित्रवृक्ष'—भव भव की पीड़ा समाप्त जो जाये इसीलिये चरित्ररूपी वृक्ष का सहारा लिया जाता है।

कुछ लोग वैराग्य के आदर्श के रूप में आदिनाथ भगवान के पुत्र भरत चक्रवर्ती का नाम लेते हैं। मुझे तो लगता है कि वैराग्य के आदर्श पात्र यदि कोई है तो रामचंद्र जी के छोटे भ्राता भरत हैं। जिन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम राम की शान को, राजा दशरथ के वंश को ओर अपनी माता की कोख को भी शोभा प्रदान की है। जिन्हें सिंहासन की भूख नहीं थी। वैराग्य की भूख थी। उन्हें भवन नहीं चाहिये, वन चाहिये था। उनके आग्रह को सुनकर राम ने कहा- "भइया मुझे पिताजी की आज्ञा है वन जाने के लिये और तुम्हें पिताजी की आज्ञा से सिंहासन पर बैठना है। तुम राज्य मुझे देना चाहते हो तो ठीक है। मैं तुम्हारा बड़ा भ्राता वह राज्य तुम्हें सौंपना चाहता हूँ।

एक तरफ पिताजी की आज्ञा और ज्येष्ठ भ्राता तो पिता तुल्य है उनकी आज्ञा और दूसरी तरफ भीतर मन में उठती वैराग्य की भावना। मुनि बनने की प्यास। परीक्षा की घड़ी है और अंत में भरत जी ने कहा कि भइया जैसी आपकी आज्ञा। मैं सब मंजूर करता हूँ। मैं यहाँ पर रहूँगा आपका कार्य करूँगा। आपका जैसा निर्देशन मिलेगा वैसा ही करूंगा। लेकिन आपके चरण चिह्न इस सिंहासन पर रखना चाहता हूँ।"

कैसी अद्‌भुत घटना है यह, इतनी त्याग-तपस्या घर में रहकर भी। यह है राजनीति, कि राजा बनना पड़ता था, बनाया जाता था। राजा बनने की इच्छा नहीं रखते थे क्योंकि क्षत्रिय कभी पैसे के भूखे नहीं रहते। अब तो वैश्य वृत्ति आ गयी। पैसे और पद का राग बढ़ गया है। सिंहासन के ऊपर ज्येष्ठ भ्राता के चरण चिह्न रखकर, उनको तिलक लगाकर, उनकी चरण-रज माथे पर लगाकर प्रजा के संरक्षण के लिये एक लघुभ्राता ओर पिता की आज्ञा से वन जाने वाले एक ज्येष्ठ भ्राता की बात अब मात्र पुराण में रह गयी है। रामायण में रह गयी है।

इस दीक्षा कल्याणक के आयोजन में कि जिसमें मुकुट उतारे जा रहे हैं, सिंहासन त्याग जा रहा है। वैराग्य की बाढ़ आ रही है, सब कुछ देखकर भी आपकी सत्ता की भूख, शासन की भूख बढ़ती जाये तो क्या कहा जाये। बंधुओ! उन राम को याद करो। लघुभ्राता भरत को याद करो। अपने ज्येष्ठ भ्राता के पीछे-पीछे चलने वाले लक्ष्मण और महलों में रहने वाली रानी सीता के त्याग को याद करो। सारे प्रजाजनों की आंखों में आंसू हैं लेकिन राजा राम अपने कर्त्तव्य में अडिग हैं।

कैसी विनय और वैराग्य का आचरण है। यह वैराग्य की कथा आज भी श्रमणों को भी आदर्श है, गृहस्थों के लिये तो आदर्श है ही। श्रमण की शोभा राग से नहीं, वीतराग निष्कलंक पथ से है। दैगम्बरी दीक्षा ही निष्कलंक पथ है। राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त ने कहा है –

मेदनी पति भी यहाँ के भक्त और विरक्त थे।
होते प्रजा के अर्थ ही रोज कार्यासक्त थे

प्रजा के लिये राजा होते थे, मात्र सिंहासन पर बैठने के लिये या अहंकार प्रदर्शित करने के लिये नहीं। उनकी प्रभुभक्ति और संसार से विरक्ति हमेशा बनी रहती थी। आज भी ऐसे ही नीति-न्यायवान्, भक्त और विरक्त भरत और राम के आये बिना शांति आने वाली नहीं है।

अंत में यही कहना चाहता हूँ कि धन्य हैं वे ऋषभनाथ भगवान जिन्होंने राष्ट्र पद्धति को अपनाते हुये प्रजा को अनुशासित किया और बाद में स्वयं आत्मानुशासित होकर दीक्षा लेकर वन की ओर बिहार कर गये। भरत चक्रवर्ती आदि भी उनकी आज्ञा के अनुसार प्रजा का पालन करते हुये मुक्त हुये। हमें क्षात्र-धर्म की रक्षा के लिये और दिगम्बरत्व की सुरक्षा के लिये वीतरागता को ध्यान में रखना चाहिये। जंगल में भले ही न रह पायें, लेकिन जंगल को याद रखना चाहिये। वीतरागता के बिना न शिरपुर मिलेगा और न ही शिवपुर ही मिलेगा। वीतरागता की उपासना ही हमारा परम कर्त्तव्य है। वही मुक्ति का एकमात्र उपाय है।

□□

धर्म-देशना

रथ आगे बढ़ता जा रहा है। अश्वगातिमान है। गन्तव्य तक पहुँचना है। मंगल का अवसर है। जीवन में वह अवसर, वह घड़ी एक ही बार आती है। उस घड़ी की प्रतीक्षा में लाखों जनता लगी हुई है। यात्री पथ में है, और अबाधित पथ को लांघता हुआ चला जा रहा है। अपने मनोरथ की पूर्ति हेतु संकल्प उसके पास है। लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये वह आतुर है। लेकिन संयत होकर अपने कदम बढ़ा रहा है और कुछ ही दूरी रह गयी है पर लग रहा है कि संकल्प पूरा नहीं हो पायेगा। संकल्प परिवर्तन के योग्य भी नहीं है क्योंकि संकल्प तो जीवन की उन्नति के लिये जीवन के उत्थान के लिये किया जाता है।

संकल्प मात्र जीवन निर्वाह के लिये नहीं होता, वह तो जीवन के निर्माण के लिये होता है। लेकिन मुक्ति के स्थान पर बंधन नजर आने लगे। जीवन परतंत्रता में फंसता चला जाये तो वह संकल्प ठीक नहीं माना जायेगा। आनंद के स्थान पर चीत्कार सुनाई पड़े तो ठीक नहीं। यही बात हुई और उस पथिक ने कहा– रोकिये, रथ को रोकिये। रथ रुक जाता है। वह यात्री नीचे उतर जाता है और कहता है कि ठहरिये आप लोग यहीं पर। मैं अकेला जा रहा हूं और वह अकेला ही आगे बढ़ जाता है।

कोई उसके पीछे जाने का साहस नहीं कर सका। अब क्या संकल्प उसके मन में आया है, यह तो वही आत्मा जानता है या तीन लोक के नाथ जानते हैं। इतना अवश्य सभी के समझ में आ रहा है कि रास्ता बदल गया है। यह वार्ता हवाओं में फैलती चली गयी। सभी चकित हैं कि यह कैसे हुआ। हमने बहुत सोच समझकर मुहूर्त निकाला था लेकिन यह अकस्मात् परिवर्तन कैसे हो गया। सब किंकर्तव्यविमूढ़ हैं। आप समझ गये होंगे। विवाह का मंगल अवसर था और पशुओं का क्रन्दन सुनकर उन्हें बंधन में पड़ा देखकर नेमिनाथ कुमार ने पथ परिवर्तित कर लिया।

अब जीवन का लक्ष्य बंधन मुक्त होना है। जीवन आज तक बंधनमय रहा, अब बंधन का सहारा नहीं चाहिये। अब आजादी के स्वर कानों में प्रविष्ट हो रहे हैं। मूक पशुओं की आजादी के साथ अपनी कर्म-बंधन से

आजादी की बात आ गयी है। निमित्त मिल गया। निमित्त हमें भी मिलता है लेकिन हमारा पथ परिवर्तित नहीं होता और सारी बात सुनकर वहाँ एक दूसरी आत्मा भी उसका अनुकरण करती चली जाती है। वह रास्ता चला गया है गिरनार की ओर। गिरनार पर्वत का नाम पहले उर्जयन्त था, बाद में गिरनार पड़ा। राजुल ने जहाँ गिर-गिरकर भी अपने संकल्प को नहीं छोड़ा। केवल स्वार्थ सिद्धि के लिये पथ बदलने वाली वह आत्मा नहीं थी।

जो अहिंसा का उपासक है यह उसी पथ पर बढ़ता है जिस पथ में अहिंसा का पोषण होता है। गिरनार के झाड़-झंखाड़ में भी उसे मार्ग प्रशस्त अनुभव हुआ। अहिंसा के पथ का पथिक अपने पथ का निर्माण स्वयं करता चला जाता है। पथ का निर्माण तो चलने से ही होता है। महाव्रती ही अहिंसा के पथ पर चल सकता है। महाव्रती इसीलिये कहा जाता है कि वह अकेला ही महान पथ पर चल पड़ता है फिर उसके पीछे बहुतों की संख्या चली आती है।

अयंनिजः परोवेत्ति गणना लघु-चेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्

यह मेरा है, वह तेरा है, ऐसी मनोवृत्ति संकीर्णता का प्रतीक है। उदार आचरण वाले उदारमना तो सारी वसुन्धरा को ही अपना कुटुम्ब मानते हैं, अपना परिवार मानते हैं। ऐसे ही उदार चरित्र वाले मुक्ति के भाजन बनते हैं। जिस पथ के माध्यम से मेरा उद्धार हो और दूसरे का पथ भी प्रदर्शित हो, ऐसे पथ पर वे चलते हैं। भले ही उस पथ पर कंटक बिछे हों। वह पथ मेरे लिये नहीं है जिसके द्वारा हिंसा का पोषण होता हो, जिसके द्वारा जीवों को धक्का लगता हो, जिसके द्वारा जीवन पतित बनता हो, जिसके द्वारा एक दूसरे के बीच दीवार खड़ी हो जाती हो, स्वार्थ परायणता आती हो, वह पथ अहिंसा का पथ नहीं है।

यही कारण था कि तोरणद्वार के पास पहुँचकर भी पथ बदल गया। कानों में वह दयनीय जीवों की आर्तध्वनि पड़ गयी। लाखों जनता ने भी सुनी लेकिन इस पथिक का पथ बदल गया। मूक प्राणियों की वेदना भरी आवाज वास्तव में यदि किसी ने सुनी तो वे नेमिकुमार थे और उसका अनुकरण करने वाली राजुल थीं। उन्होंने अपना ही नहीं दुनिया का पथ प्रदर्शित किया। धन्य हैं अहिंसा के पथ के पथिक, बारात को खुश करने के लिये वन्य जीवों

की हिंसा मेरे लिये ठीक नहीं है। आज पर्यावरण प्रदूषण की बात चलती है। बंधुओं! पर्यावरण के प्रदूषण में न वन्य प्राणियों का, न वनस्पति जगत का, न ही अन्य किसी न देवता का हाथ है, यह प्रदूषण मात्र मानव के मनोदूषण से उत्पन्न हो रहा है। अहिंसा के समर्थक जीवों के ऊपर दया करके अपनी सुख सुविधा को छोड़कर सबके कल्याण के मार्ग पर चलने वाले वे उदार-चरित्र वाले नेमिनाथ जैसे महान पुरुष ही वास्तव में पर्यावरण को सुरक्षित रखने में सहयोगी हैं।

यदि दया है तो जीवन धर्ममय है, दयामय धर्म अहिंसा-धर्म एक वृक्ष की तरह है। शेष सभी सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य उसी के संवर्धन-संरक्षण और पोषण के लिये हैं।

जैन समाज में परिग्रह की बात आती है कि परिग्रह बहुत है। बंधुओ, मात्र धन संपदा का संग्रह करना परिग्रह नहीं है। परिग्रह का अर्थ तो मूर्छा है। मूर्छा का अर्थ है गाफिलता, वस्तुओं के प्रति अत्यन्त आसक्ति। दयाधर्म के विकास के लिये शान्ति और आनंद के विस्तार के लिये जो अपने वित्त (धन सम्पदा) का समय-समय पर बूंद-बूद कर संग्रह किया है यदि उसे वितरण कर देता है तो वह परिग्रह एवं पाप का संग्रहकर्ता नहीं माना जाता है। जैन समाज का इतिहास है, आज तक उसने राजा-महाराजाओं के लिये देश पर विपत्ति आने पर अपने भंडार खोले दिये हैं। संग्रहीत धन का वितरण करके सदुपयोग किया है। अपनी इसी संस्कृति का अनुकरण करते हुये आज भी अपरिग्रह वृत्ति को अपने जीवन में लाने का प्रयास करना चाहिये।

वीतरागता, उज्ज्वल परिणाम और परोपकार की भावना ही जैन धर्म की शान है।

धम्मो मंगल मुक्किटं अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तस्य पणमंति जस धम्मे सया मणो॥

अहिंसा, तप और संयम ही मंगलमय धर्म है। जिसका मन सदा उस धर्माचरण में लगा है उसे देव लोग भी नमस्कार करते हैं। यह जैन धर्म विश्व-धर्म है। आदिनाथ भगवान के समय जो धर्म था वही तो जैन धर्म है और आदिनाथ भगवान ही आदिब्रह्मा है। जिनका उल्लेख वेदों में आता है और उनके पुत्र भरत के नाम से ही यह देश भारत देश माना जाता है। हमें भी उन्हीं का अनुकरण करते हुये जीवन में अहिंसा को धारण करना चाहिये।

जैनियों ने कभी 'परास्परोपग्रहो जैनानाम्' नहीं कहा। जैनधर्म में तो 'परस्परोग्रहो जीवानाम्' की बात आती है। साम्प्रदायिकता के नाम पर अपने-अपने घर भरना, अपना स्वार्थ सिद्ध करना और अहं को पुष्ट करना ठीक नहीं है, आज अहं वृत्ति नही सेवा, वृत्ति को फैलाना चाहिये। जीवन भले ही चार दिन का क्यों न हो लेकिन अहिंसामय हो तो मूल्यवान है जो धर्म के साथ क्षणभर भी जीता है वह धन्य है।

भगवान ऋषभदेव ने तपस्या के उपरान्त कैवल्य प्राप्त होने पर हमें यही उपदेश दिया कि प्रत्येक आत्मा अपना आत्मकल्याण करने के लिये स्वतंत्र है। हमें सभी जीवों के आत्म कल्याण में करुणावान होकर दया धर्म से ओतप्रोत होकर परस्पर उपकार की भावना रखकर, यथा संभव मदद करनी चाहिये।

□□

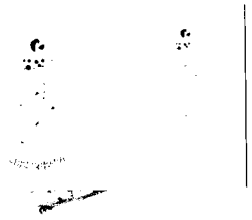

निष्ठा से प्रतिष्ठा

आज यह पंचकल्याणक एवं गजरथ महोत्सव का समापन सागर की इस विशाल जन-राशि के सामने सानंद सम्पन्न हुआ। यह निश्चित है कि कोई भी कार्य होता है उसकी भूमिका महीनों/बरसों पहले से चलती है और वह कार्य सम्पन्न हो जाता है कुछ ही दिनों में। आज तक इस सागर की एक यही लगन रही कि पंचकल्याणक महोत्सव सानंद सम्पन्न करना है और आज यह कार्य संपन्न हुआ तो सब ओर हर्ष छाया है, सारी थकान भूल गयी है।

बंधुओ! हमारे सामने हमेशा कर्तव्य रहना चाहिये। कर्तापन नहीं आना चाहिये। कोई भी कार्य होता है तो वह उपादान की योग्यता के अनुरूप होता है, लेकिन उसके लिये योग्य सामग्री जुटाना भी आवश्यक होता है। सभी के परस्पर सहयोग से ऐसे महान् कार्य सम्पन्न होते हैं। भावों में आस्था होनी चाहिये। धर्म के प्रति आस्था जब धीरे-धीरे निष्ठा की ओर बढ़ती है, प्रगाढ़ होती है, तभी प्रतिष्ठा हो पाती है और जब प्रतिष्ठा की ओर दृष्टिपात नहीं करते हुये आगे बढ़ते हैं तो संस्था बन जाती है, तभी सारी व्यवस्था ठीक हो पाती है। और हमारी आस्था सुधर पाती है। यह जिन बिंब प्रतिष्ठा आस्था के साथ हमारी अवस्था को सुधारने में सहायक है।

इस समारोह के सानंद सम्पन्न होने में पुद्गल द्रव्य भी काम कर रहा है। अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार सभी सहयोगी बने हैं। चैतन्य परिणाम तो उपादान के रूप में माना ही गया है जो सामूहिक रूप से इस कार्य को सम्पन्न करने में साक्षात् कारण है। ऐसे भव्य आयोजन इसीलिए एकता के प्रतीक बन जाते हैं। यह एक दूसरे के सहयोग की भावना का परिणाम है कि विस्मय में डालने वाला इतना वृहत् कार्य सम्पन्न हो गया। मानव एक मात्र ऐसा प्राणी है जो सब कुछ कर सकता है। लेकिन इतना ही है कि उसका दिल और दिमाग ठीक काम करता रहे। उसमें लगन और एकता बनी रहे। तब देवता भी उसके चरणों में नतमस्तक हो जाते हैं और सहयोगी बनते हैं।

प्रकृति का सहयोग दो प्रकार का है। एक बाहरी प्रकृति जो दिखायी पड़ती है और एक भीतरी प्रकृति जो हमारा स्वभाव है, वह दिखाई नहीं पड़ती। यदि उस भीतरी स्वभाव में, प्रकृति में विकार उत्पन्न हो जाये तो

बाहरी प्रकृति अनुकूल होने पर भी संकट आ जाता है। यदि उज्ज्वल भाव हो, भीतरी प्रकृति शान्त हो तो बाहरी प्रकृति शान्त हो तो बाहरी प्रकृति रुष्ट नहीं होती वरन् संतुष्ट हो जाती है। कल सुना था कि व्यवस्था में लगे हुये डी.आई.जी., क्लेक्टर और सभी प्रशासनिक अधिकारी वगैरह का कहना है कि रथ की फेरी के समय धूल न उड़े इसलिये पानी के सिंचन की व्यवस्था होनी चाहिये, वह हम करेंगे, तो प्रकृति ने स्वयं ही मेघों के माध्यम से रात्रि में मानो सिंचन ही कर दिया। आशय यही है कि प्रत्येक समस्या का समाधान संतोष, शान्ति, संयम और परिणामों की उज्ज्वलता से संभव है।

आज महान तीर्थंकर, केवली, श्रुतकेवली या ऋद्धिधारी मुनि महाराज आदि तो नहीं है जिनके पुण्य से सारे कार्य सानंद सम्पन्न हो सकें पर सामूहिक पुण्य के माध्यम से आज भी धर्म के ऐसे महान आयोजन सानंद सम्पन्न हो रहे हैं। यही धर्म का महात्म्य है। यही संयम की महिमा है। संयमी के साथ असंयमी भी संयमित होकर चले, वह बहुत कठिन होता है लेकिन आप सभी ने इस कठिनाई को भी बड़ी लगन से संयमित होकर पार कर लिया। यदि इस प्रकार आगे भी करते जायेंगे तो संयमी बनने में देर नहीं लगेगी। संयम से हमारा यहाँ तात्पर्य संयम की ओर रुचि होने से है जिसका उद्देश्य परम्परा से निर्वाण प्राप्त करना है।

जो जीवन शेष है वह आप धार्मिक आयोजनों में व्यतीत करें और परस्पर उपकार और सहयोग के महत्व को समझें। जो जीव शान्ति और सुख चाहते हैं। अपना उत्थान चाहते हैं उनके लिये यथोचित सामयिक सहयोग यदि आप करेंगे उन्हें अपने समान मानकर, अपना मित्र समझकर उनका हित चाहेंगे तो परस्पर एक दूसरे का कल्याण होगा।

सिगड़ी के ऊपर एक बर्तन रखा है उसमें दूध तपाने के लिये रखा गया है। नीचे आग जल रही है। दूध तप रहा है। तपता-तपता वह दूध मालिक की असावधानी के कारण ऊपर आने लगा। लगता है मानो वह कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्ति के पास रहना चाहता है और चूंकि उसका मालिक कर्त्तव्यनिष्ठ नहीं है, इसलिये उसे छोड़ना चाह रहा है या कहो कि जो उसे सता रहा है, पीड़ा दे रहा है, उस अग्नि को देखने के लिये बाहर आ रहा है और इतने में ही थोड़ी सी जल की धारा उसमें छोड़ दी गयी और वह दूध जो उबल रहा था, उफन रहा था, वह बिल्कुल शान्त हो गया।

यह सोचने की बात है कि थोड़ी सी जल की धारा दूध की शान्ति के लिये कारण बन गयी। इसका रहस्य यही है कि दूध का मित्र जल है। जल के कारण ही दूध, दूध माना जाता है। यदि दूध में जल तत्त्व खो जाये तो उसे आप कहते हैं–खोवा, और खोवा की लोकप्रियता दूध के समान नहीं है। दूध को रस माना गया है। दूध बालक से लेकर वृद्ध सभी को प्रिय है और सभी के योग्य भी है। तो दूध में जो जल मिला है उसी से सभी उसको चाहते हैं। दूध की जल से यह मित्रता अनोखी है।

विजातीय होकर भी दूध और जल में गहरी मित्रता है। दूध की दूध से मित्रता भले ही न हो लेकिन जल से तो हमेशा रहती है। गाय का दूध यदि अकौआ के दूध से मिल जाये तो फट जाता है। विकृत हो जाता है। दोनों की मैत्री कायम नहीं रह पाती। दूध का उपकारी इस प्रकार एक मात्र जल ही है। हमें सोचना चाहिये कि जब दूध और जल में मैत्री हो सकती है तो हम मनुष्यों में परस्पर मैत्री भाव, सहयोगी भाव नहीं रह सकता? रहना चाहिये।

वर्तमान में विभिन्न प्रकार के यान तीव्रगति से अंतरिक्ष में प्रक्षेपित किये जाते हैं और वे पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण कक्षा से बाहर निकलकर अंतरिक्ष में प्रवेश कर लेते हैं। यह क्षमता पुद्गल के पास है। इसे हम विज्ञान की प्रगति और उन्नति मानते हैं तो क्या हम ऐसे धार्मिक आयोजनों के माध्यम से अपने जीवन को संवेगवान व संयमित करके अपने भावों को उज्ज्वल बनाकर के मोह की कक्षा से अपने आप को ऊपर नहीं उठा सकते। जो महान् आत्मायें अपने भावों की उज्ज्वलता और तपस्या के प्रभाव से अनंतकाल के लिये मोह की कक्षा से ऊपर उठ गयी हैं, उनका स्मरण अवश्य करना चाहिये और उन्हें अपना आदर्श मानकर अपने जीवन को कल्याण करना चाहिये।

अंत में यही भावना करता हूँ कि–

यही प्रार्थना वीर से
अनुनय से कर जोड़।
हरी भरी दिखती रहें
धरती चारों ओर।

□□

आगम प्रकाशन

परम पूज्य आर्यिका श्री दृढमती माता जी (ससंघ) का सन् 1994 का चातुर्मास रेवाड़ी में हुआ। वह समाज के लिये अपूर्व प्रेरणा एवं धार्मिक जागरण का कारण बना। अन्य उपलब्धियों के साथ साथ 'आगम प्रकाशन' की स्थापना महत्वपूर्ण उपलब्धि रही। पूज्य आर्यिका संघ सतत अध्ययन चिन्तन, मनन एवं तत्त्व चर्चा में अभ्यस्त हैं। आगम के प्रकाशन, प्रचार-प्रसार एवं वाचन में पूज्य श्री दृढ़मती माता जी की विशेष रुचि है। तदनुरूप 'आगम प्रकाशन' की स्थापना की गई। संघस्थ सभी माताजी के मंगल आशीर्वाद से 'स्तुति सौरभ' मानव धर्म, मानवता की धुरी, स्तुति विद्या, समणसुत्तं व 'साधक की मौन परछाईयां' का प्रकाशन हुआ। स्तुति सौरभ व मानव धर्म के कई संस्करण निकाले गये। भाई अरविन्द कुमार जैन ने प्रकाशन में विशेष रुचि लेकर अथक परिश्रम किया जिससे इतना प्रकाशन सफल हो सका।

लगभग 12-13 वर्षों के अन्तराल के पश्चात् वर्ष 2010 में "मानव धर्म" के हिन्दी तथा हिन्दी व अंग्रेजी अनुवाद सहित दो संस्करण प्रकाशित हुए। पूज्य संघ का वर्ष 2011 का चातुर्मास नरसिंहपुर (म.प्र.) में हुआ। पूज्य दृढ़मती माता जी का यह पच्चीसवाँ चातुर्मास था। प्रबल भावना रही कि पच्चीस आगम ग्रंथों का प्रकाशन करवाया जाए। "कर्त्तव्य पथ प्रर्दशन", बृहत्स्वयंभूस्तोत्रम्, इष्टोपदेश, "समग्र खण्ड चार" आदि सात ग्रंथों का प्रकाशन हो चुका है। प्रकाशन का कार्य अनवरत करते रहने का प्रयास रहेगा। परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी के आशीर्वाद से एवं आप सभी धर्मप्रेमी बन्धुओं के सहयोग से आगम प्रकाशन जिनवाणी की सेवा में तत्पर है।

सत्साहित्य का जितना अधिक प्रकाशन व पठन-पाठन प्रारम्भ होगा, असत् का पलायन होगा। अपनी संस्कृति की रक्षा के लिये आज सत्साहित्य के प्रचुर प्रकाशन की अत्यन्त आवश्यकता है। प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रणीत ग्रंथों का प्रकाशन करके मंदिर जी में स्वाध्याय हेतु रखें जाये जिससे प्रत्येक श्रावक पढ़कर मोह रूपी अंधकार को नष्ट करके ज्ञान ज्योति प्रकाशित कर सकें।

सभी आर्थिक सहयोगी दातार धन्यवाद के पात्र हैं उनके सहयोग के बिना प्रकाशन संभव नहीं था प्रत्यक्ष व परोक्ष में रहे प्रकाशन में सभी सहयोगियों के हम हृदय से आभारी है। आगामी प्रकाशनों के लिये सभी बन्धुओं से तन-मन-धन से पूर्ण सहयोग की आशा करते हैं। प्रकाशन के माध्यम से जिनवाणी का अधिक से अधिक प्रचार प्रसार हो यही भावना है।

अजित प्रसाद जैन

रेवाड़ी

प्रकाशित ग्रंथों की सूची

		लेखक	मूल्य
1.	स्तुति सौरभ	संकलन पू. आ. दृढ़मति माताजी ससंघ	80/
2.	स्तुति विद्या	आ. समन्तभद्र जी	अप्राप्य
3.	मानवता की धुरी	पं. नीरज जैन (सतना)	अप्राप्य
4.	समणसुत्तं	संकलन श्री जिनेन्द्र वर्णी	अप्राप्य
5.	सो बोध कथायें	पं. निहालचन्द जैन	50/
6.	मानव धर्म (हिन्दी व अंग्रेजी)	आ. ज्ञानसागर जी महाराज	150/
7.	कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन	आ. ज्ञानसागर जी महाराज	25/
8.	सम्यक्त्वसारशतकम् (हिन्दी व्याख्या सहित)	आ. ज्ञानसागर जी महाराज	60/
9.	बृहत्स्वयम्भूस्तोत्रम्	आ. समन्तभद्रजी	125/
10.	इष्टोपदेश	आ. पूज्यपाद स्वामी	150/
11.	प्रवचन प्रतिष्ठा	आ. विद्यासागर जी	40/
12.	मानव धर्म (ग्रंथाकार)	आ. ज्ञानसागर जी महाराज	60/
13.	समग्र (भाग-4)	आ. विद्यासागर जी	150/

आगम प्रकाशन के संस्थापक सदस्यगण

1. देवेन्द्र जैन, सर्राफ, गुड़ बाजार, रेवाड़ी-123401
   मो. : 9896960070
2. रमेश जैन बजाज, गुड़ बाजार, रेवाड़ी
   मो. : 9416816131
3. डॉ. विनय कुमार जैन, रेलवे रोड़, रेवाड़ी
   मो. : 9416427070
4. महेन्द्र कुमार जैन सर्राफ, गुड़ बाजार रेवाड़ी
   मो. : 9416174951
5. अरविन्द कुमार जैन, गुड़ बाजार रेवाड़ी
   मो. : 09315510962